संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकियाँ

प्रमाण पत्र

1. पुस्तक का नाम :— संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकियाँ

2. विषय:— भारतीय संस्कृति के विकास में सरस्वती के विभिन्न पक्षों पर विचार

3. लेखक/प्रकाशक का नाम और पता:— लेखक — डॉ० मुहम्मद इसराइल (खाँ) एच/डी-56, नया कविनगर, गाज़ियाबाद, प्रकाशक — श्रीमती जिलेबा बीबी — वही पता " " "

4. लेखक का प्रमाण पत्र निम्नलिखित है:—

(क) मैं प्रमाणित करता हूँ कि मेरी उपर्युक्त रचना मौलिक प्रथम बार वर्ष 1985 में प्रकाशीत है

(ख) मैं मूलत: उत्तर प्रदेश का निवासी हूँ।

(ग) मैं संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली में रीडर के पद पर कार्यरत हूँ।

दिनांक 14.8.1986.

हस्ताक्षर। [illegible]
14/8/86

संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकियाँ

Dr MOHAMMAD ISRAIL KHAN

लेखक

डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ

एम० ए०, पी-एच० डी०

रीडर

संस्कृत-विभाग

दक्षिण दिल्ली परिसर

दिल्ली विश्वविद्यालय,

नई दिल्ली

(भारत)

क्रीसेण्ट पब्लिशिंग हाऊस

एफ/डी-५६, न्यू कविनगर,

गाजियाबाद,

(भारत)

संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकियाँ

डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ

भारत में प्रथम संस्करण १९८५

मूल्य रु० १०० मात्र

प्रकाशक :

श्रीमती जिलेबा बीवी

क्रीसेण्ट पब्लिशिङ्ग हाऊस

एफ/डी-५६, न्यू कविनगर,

गाज़ियाबाद, भारत

मुद्रक :

मीनार प्रिंटर्स

शाहदरा, दिल्ली-११००३२

प्रिय मित्रों

को

उन की मधुर स्मृति

में

समर्पित

जिन्हों ने मुझे सदैव

आदर तथा सम्मान दिया

तथा मेरे प्रति शाश्वत्

जिन के हृदय में

सद्भावना

बनी रही

—०—

प्राक्कथन

भारतीय परम्परा में सरस्वती का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सरस्वती के दो स्वरूप हमें मिलते हैं। एक नदी के रूप में और दूसरा वाग्देवता के रूप में। नदी के रूप में आज सरस्वती प्रत्यक्ष नहीं है, केवल प्रयागराज में गंगा और यमुना के साथ सरस्वती की पृथ्वी के अन्दर बहती हुई धारा मिलती है। जहाँ स्नान करने से समस्त अशुभ का क्षय हो जाता है और पुण्य का उदय होता है। ऐसी भारतीय मान्यता है। वाग्देवता के रूप में सरस्वती की आराधना तथा कृपा से विद्या तथा बुद्धि के वैभव का उद्रेक होता है।

डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ ने सरस्वती पर ही संस्कृत में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनके शोध-प्रबन्ध का विषय था 'Sarasvati in Sanskrit literature' यह शोध-प्रबन्ध १९७८ में प्रकाशित हुआ था। इसी विषय पर इन का चिन्तन और शोध-कार्य चालू रहा और समय-समय पर इन्होंने सरस्वती के अन्यान्य पक्षों पर अपने लेख प्रकाशित किए। इन्हीं लेखों का संग्रह अब यहाँ 'संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकियाँ' इस शीर्षक के साथ विद्वानों के सामने प्रस्तुत हो रहा है। इन निबंधों में संस्कृत-साहित्य में विकास, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रंथ, पुराण तथा लौकिक संस्कृत-साहित्य के आधार पर उपस्थित किया गया हैं। ग्रीक तथा रोमन पौराणिक कथाओं में सरस्वती की समकक्ष देवियों के साथ भी एक संक्षिप्त तुलनात्मक रूप-रेखा प्रस्तुत ग्रंथ में जुड़ी है। इस विषय पर अभी और अधिक गहराई के साथ अध्ययन अपेक्षित है। आशा है कि डॉ० खाँ इस विषय को आगे बढ़ाएँगे। इस प्रसंग में सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् द्यु मों के ग्रन्थ तथा लेखों के अध्ययन से बहुत उपयोगी सामग्री प्रस्तुत हो सकती है। वेद में प्राप्त सरस्वती के विशेषणों के आधार पर सरस्वती के स्वरूप का चित्रण बहुत अच्छा बना है। सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति के सिलसिले को भी यदि पुराणों के प्रसिद्ध कालक्रम को दृष्टि में रखकर दिखाया जाता, तो ज्यादा अच्छा था। सरस्वती की विभिन्न प्रतिमाओं के चित्र काल-क्रम के अनुसार परिशिष्ट में रखे जाते, तो पाठकों को एक रोचक सामग्री प्राप्त होती। इन छोटी-मोटी बातों के बावजूद भी प्रस्तुत ग्रन्थ में सरस्वती के उद्गम और विकास के साथ स्वरूपावबोध के लिए पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। डॉ० खाँ ने वास्तव में इस विषय पर खूब

परिश्रम किया है और वे हार्दिक वधाई के पात्र हैं। मैं इस पुस्तक का स्वागत करता हूँ और अपने सहकर्मी विद्वान् डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ का पाण्डित्यपूर्ण लेख-संग्रह के लिए हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—रसिक विहारी जोशी
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् (पेरिस)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली १६.७.१९८५

प्रस्तावना

सरस्वती वैदिक आर्यों की पूज्य देवी थी। इस ने वैदिक सभ्यता को अत्यधिक प्रभावित किया था। इस के कई कारण हैं। उन कारणों में से एक कारण सरस्वती का नदी होना है। यह ऋग्वैदिक काल की सबसे विशाल तथा महती नदी थी तथा इस ने वैदिक सभ्यता तथा संस्कृति के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दिया था। अनेक ऋषि इस के तट पर निवास करते थे, जहाँ से उन्होंने ऋचाओं का दर्शन किया तथा वेद अस्तित्व में आए। यह नदी शनैः शनैः स्नेहाधिक्य के कारण नदी-देवता बनी तथा पुनः वाक्, वाग्देवी तथा देवी बन गई। इस प्रकार इस सरस्वती के पीछे उत्पत्ति तथा विकास का एक विचित्र इतिहास है। ब्राह्मणों में इस का तादात्म्य वाक् से हो गया है। तंत्रों में इसे एक नाडी-विशेष से संयुक्त कर दिया गया है। पुराणों में इस का मूर्तिकरण हो गया है। आधुनिक काल तक आते-आते यह अनेक कलाओं तथा विद्याओं की अधिष्ठातृ-देवी बन गई है। ग्रीक तथा रोमन पुराण-कथा में इस के समकक्ष कुछ देवियाँ हैं, जिन का व्यक्तित्व सरस्वती से बहुत मिलता-जुलता सा है। ऐसे व्यक्तितव वाली सरस्वती के स्वरूप का निरूपण एक आकर्षण का विषय है।

सरस्वती से सम्बद्ध कुछ ग्रंथ हैं तथा उन में से मुख्य रूप से डॉ० ऐरी, डॉ० एन० एन० गोडबोले तथा स्वत: मेरी 'Sarasvati in Sanskrit Literature' मुख्य हैं। इन के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में प्रसङ्गतः सरस्वती पर विद्वानों ने विचार किया है। के० सी चट्टोपाध्याय, सर आरेल स्टाइन, दिव प्रसाद दास गुप्त, आनन्द स्वरूप गुप्त, बी० आर० शर्मा आदि ने स्वतंत्र रूप से सरस्वती पर शोध-लेख लिखे हैं।

प्रकृत पुस्तक में शोध-लेखों का संग्रह है। ये शोध-लेख सरस्वती के अनेक स्वरूपों को स्पष्टतः प्रकाशित करते हैं। इन शोध-लेखों को समय-समय पर विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था तथा शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया था। ऐसे लेखों का संग्रह विद्वानों के सम्मुख पुस्तकाकार में आ रहा है। आशा है कि विद्वान् इस का स्वागत करेंगे।

दिनाङ्क १२.७.१९८५ **—मुहम्मद इसराइल खाँ**

आभार-प्रदर्शन

मुझे सरस्वती पर कार्य करने का प्रोत्साहन प्रो० सूर्यकान्त, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़ से मिला। डॉ० सूर्यकान्त सर्वप्रथम बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष थे। वहाँ से अवकाश प्राप्त कर अलीगढ़ आये थे। मैं ने सरस्वती पर शोध-कार्य डॉ० मंत्रिणी प्रसाद के निर्देशन में प्रारम्भ किया था, परन्तु उन के विदेश चले जाने पर शोध-कार्य की समाप्ति प्रो० राम सुरेश त्रिपाठी के सुयोग्य निर्देशन में हुई। यह ग्रंथ यद्यपि पी-एच० डी० से सम्बद्ध नहीं है, परन्तु उस अध्ययन की शृङ्खला से अवश्य जुड़ा है। फलतः मैं इस अध्ययन के लिए अपने उन सभी गुरुओं का आभारी हूँ।

मेरी पुस्तक **'सरस्वती इन संस्कृत लिटिरेचर'** सन् १९७८ में प्रकाशित हुई थी। उस पुस्तक का विद्वानों ने इतना स्वागत किया कि उसका प्रथम संस्करण तीन वर्ष की अवधि में ही समाप्त होगा। विद्वानों एवं मित्रों ने पुनः पुनः उसके दूसरे संस्करण के निमित्त मुझे प्रेरित किया। पुस्तक लिखते समय तथा बाद में मुझे सरस्वती पर चिन्तन करने का अवसर मिला। समय-समय पर मेरे शोध-लेख छपते रहे। प्रकृत पुस्तक में उन शोध-लेखों का संग्रह है। मैं उन विद्वानों तथा मित्रों का आभारी हूँ, जो मुझे सदैव प्रेरित करते रहे। मुझे आशा है कि वे इस पुस्तक को देख कर हर्षातिशय का अनुभव करेंगे।

मेरे पास समय-समय पर सङ्केतित पुस्तक के निमित्त पत्र आते रहते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर मैं हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ कि उन के पत्रों का उत्तर देते समय अब मैं उन्हें निराश नहीं करूँगा। प्रथम पुस्तक न सही, वे इस पुस्तक को जानकर प्रसन्न होंगे। मैं इस कोटि में आने वाले विद्वान् तथा विद्यार्थियों का भी आभारी हूँ। अभी कुछ दिन पूर्व कई पत्र (R-357/220 Dated 15.5.85 तथा R-357/112 Dated 15.2.85) भारतीय ज्ञान-पीठ, नई दिल्ली से आये हैं। यह पत्र श्री गोपीलाल अमर जी का है, जो वहाँ रिसर्च आफ़िसर हैं। मैं आज उनको साभार सूचित कर रहा हूँ।

मैं ने इस पुस्तक को लिखने में अनेक विद्वानों की पुस्तकों तथा लेखों की सहायता ली है, अत एव उन के प्रति आभारी हूँ।

मैं ने अपनी प्रथम पुस्तक लिखते समय अनेक पुस्तकालयों की सहायता ली थी। ऐसे पुस्तकालयों में मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय; भण्डारकर

ओरिएण्टल इन्सटीच्यूट पुस्तकालय, पूना; जयकर ग्रंथालय, पूना; डेकन कालिज पुस्तकालय, पूना; सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, वाराणसी; नेशनल म्युज़ियम पुस्तकालय, नई दिल्ली आदि हैं। यहाँ से एकत्रित सामग्रियों ने इस पुस्तक के प्रस्तुतिकरण में बहुशः सहायता दी है, अत एव मैं इन पुस्तकालयों के पदाधिकारियों का अत्यन्त ऋणी हूँ।

मैं उन विद्वानों का भी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने शोध के मध्य मुझे अपने विचारों तथा परामर्शों से लाभान्वित किया।

मैं अन्त में अपने प्रकाशक तथा मुद्रक के प्रति धन्यवादार्पण कर रहा हूँ, जिन्हों ने इस पुस्तक को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में महत्त्पूर्ण योग दिया है।

दिनाङ्क १२.७.१६८५ —मुहम्मद इसराइल खाँ

विषय-सूची

—१२—

—१—

संस्कृत-साहित्य में सरस्वती का विकास

(Evolut'on of Sarasvati In Sanskrit Literature)[1]

प्रकृत शोध-प्रबन्ध सात अध्यायों तथा एक परिशिष्ट भाग में विभक्त है। प्रथम अध्याय का नाम 'सरस्वती का प्राथमिक नदी-रूप' है। इस सन्दर्भ में यह बताया गया है कि सरस्वती सर्वप्रथम एक नदी थी। यह प्राचीन भारत की एक अत्यन्त विशाल तथा गहरी नदी थी। ऋषि-गण इस के किनारे पर रहते थे। इसका जल अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्धक था तथा इस नदी का तट शान्त वातावरण से युक्त था, अत एव ऋषि-गण इससे अत्यन्त प्रभावित होकर इस पर देवी का आरोप करने लगे तथा साथ-साथ इसे यज्ञ से सम्बद्ध कर मंत्रों के उच्चारण में इसकी महती उत्प्रेरणा की कल्पना कर इसे मंत्रों की देवी अथवा वाग्देवी भी स्वीकार करने लगे। **ऋग्वेद** में **'आपः'** का वर्णन प्राप्त होता है। ये जल सामान्यतः नदियों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा इन नदियों में भी सरस्वती प्रधान है। **वामनपुराण** (४०.१४) में सभी जलों का सरस्वती से तादात्म्य दिखाया गया है। इस आधार पर वैदिक जलों का सरस्वती से तादात्म्य दिखाना असङ्गत नहीं है। हेमचन्द्राचार्य (**अभि० चि०** ४.१४५-१४६) से इस कथन की पुष्टि देखी जाती है। तदनन्तर सरस्वती शब्द की व्युत्पत्ति दिखाई गई है, जिससे उसका जल से युक्त होना, गतिशीला होना, उत्साह-सम्पन्ना होना आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः सरस्वती उत्तर भारत की एक महती नदी थी और यह दृषद्वती नदी के साथ ब्रह्मावर्त का निर्माण करती थी—इस ओर संकेत स्वतः मनु ने **मनु० स्मृ०** (२.१७) में किया है।

इस निरीक्षण के उपरान्त सरस्वती के वास्तविक स्थान तथा मार्ग के अन्वेषण का प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में राथ, के० सी० चट्टोपाध्याय, मैक्समूलर, दिवप्रसाद दास गुप्ता आदि विद्वानों के मतों को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रसङ्ग में भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों का निरीक्षण किया गया है। भौगोलिक तथ्य के आधार पर सिद्ध किया गया है कि सरस्वती सिवालिक रेञ्जेज से निकलती थी। सिवालिक रेञ्जेज में भी **'प्लक्ष प्रास्रवण'** सरस्वती के उद्‌गम का एक सुनिश्चित स्थान था। भौगोलिक तथ्यों में समुद्रों का स्थान भी प्रमुख है। अति प्राचीन काल में भारत की भौगोलिक स्थिति आज से सर्वथा भिन्न थी तथा आज के 'गङ्गेटिक' मैदान के पश्चिम तथा राजस्थान के पूर्व की ओर एक **Tethys Sea** था, जिसमें सरस्वती

---

1. Doctorate for this thesis has been awarded and the work is published by **Crescent Publishing House, F/D-56, New Kavinager, Ghaziabad, U. P. (India)**

पहाड़ों से आकर गिरती थी तथा राजस्थान समुद्र से होकर अरब सागर में विलीन होती थी। पुनः भू-परिवर्तनों से सरस्वती का मार्ग बदल गया तथा यह और उत्तर तथा पश्चिमवर्ती हो गई। पुराणों में सरस्वती के इस परिवर्तन को **प्राची** (**पद्म-पुराण**, ५.१८.२१७) तथा **पश्चिमामुखी** (**स्कन्दपुराण**, ७.३५.२६) से अभिव्यक्त किया गया है। ऐतिहासिक तथ्यों में कतिपय जातियों अथवा वंशों का वर्णन किया गया है, जिनमें भरत, कुरु और पुरु प्रमुख हैं, जिनका **ऋग्वेद** में सरस्वती नदी से घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इस सम्बन्ध में स्वतः **ऋग्वेद** में सरस्वती को '**पञ्च जाताः वर्धयन्ती**' कहा गया है। चूँकि इन जातियों (वंशों) का भारत के उत्तर तथा पश्चिम भागों से सम्बन्ध प्रायः स्वीकृत है, अत एव सरस्वती इन्हीं भागों में होकर बहती थी। इस अध्याय के अन्त में '**विनशन**' का निश्चिकरण किया गया है। '**विनशन**' सरस्वती के भूमि में समाने का स्थान है। '**विनशन**' के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, अत एव यहाँ भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। **इम्पीरियल गजेटियर** में पटियाला राज्य में '**विनशन**' प्रदर्शित हैं। आज के विद्वान् तथा भूतत्व-वेत्ता 'घग्घर केनाल' को प्राचीन सरस्वती का मार्ग स्वीकार करते हैं। प्रकृत शोध-प्रबन्ध में यही मत स्वीकार किया गया है। प्रयाग में सरस्वती का मिलन नहीं होता है, पर यह निश्चित है कि प्राचीन काल में सरस्वती के दो भाग हो गये थे, जिनमें से एक भाग यमुना में मिल गया था। इस प्रकार सरस्वती तथा यमुना संयुक्त रूप से गङ्गा से प्रयाग में मिलती हैं। अन्त में अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं से सरस्वती के मार्ग को कतिपय विशिष्ट स्थानों से होकर जाता हुआ दिखाया गया है।

द्वितीय अध्याय '**ऋग्वेद** में सरस्वती का स्वरूप' है। यहाँ सर्वप्रथम सरस्वती के भौतिक पक्ष (स्थूल पक्ष—नदी-रूप) को प्रस्तुत किया गया है तथा दैवी रूप का भी प्रस्तुतीकरण किया गया है। इस अध्याय से ज्ञात होता है कि **ऋग्वेद** में अनेक स्थलों पर सरस्वती को नदी-रूप में प्रस्तुत किया गया है। भौतिक सन्दर्भ में सरस्वती के अङ्गों, सौन्दर्य आदि का वर्णन किया गया है। उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने वाले शब्द '**सुयमा**', '**शुभ्रा**', '**सुपेशस्**' आदि हैं। तदन्तर सरस्वती के मानसिक पक्ष को स्पष्ट किया गया है। इस सन्दर्भ से सरस्वती को '**धियावसुः**', '**चोदयित्री सुनृतानाम्**', '**साधयन्ती धियम्**', आदि कहा गया है। मानसिक पक्ष के बाद सरस्वती का सामाजिक पक्ष उभारा गया है। इसके भीतर सरस्वती को एक माता, बहिन, पत्नी, पुत्री तथा सखी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। माता के सम्बन्ध से उसे **अम्बितमा**, **सिन्धुमाता**, **माता** आदि कहा गया है। बहिन के रूप से उसे **सप्तस्वसा**, **सप्तधातुः**, **सप्तथी**, **त्रिष-धस्था**, **स्वसख्या**, **ऋतावरी**, आदि कहा गया है। पत्नी के रूप में वह **वीरपत्नी**, **वृषणः पत्नी**, **मरुत्वती**, आदि है। पावीरवी उसके पुत्री-रूप को व्यक्त करता है। '**मरुत्सखा**', '**सख्या**' और '**उत्तरा सखिभ्यः**' से उसका सखी-रूप ज्ञात होता है। चौथे शीर्षक के अन्तर्गत सरस्वती के प्रमुख-प्रमुख कार्यों का विवेचन किया गया है। इस दिशा में सर्व-

प्रथम दिखाया गया है कि सरस्वती **धनदात्री** है। यही कारण है कि उसका स्तन **'शशयः'**, **'रत्नधा'** तथा **'वसुवित्'** कहा गया है। पुनः उसे **रायश्चेतन्ती**, **आपो रेवतीः** कहा गया है। सरस्वती आनन्द-दात्री भी है। **'मयोभूः'** शब्द इसकी पुष्टि करता है। सरस्वती सन्तानःदात्री भी है। इस तात्पर्य से सरस्वती का स्तवन **सिनीवाली** तथा **अश्विनौ** (ऋ० १०.१८४.१) के साथ हुआ है। यह अन्न-दात्री के रूप से **वाजिनीवती** तथा **वाजिनी** कही गई है। 'वाज' का अर्थ अन्न, बल आदि है। इसके अतिरिक्त **'आयूंषि'** तथा **'यशस्'** भूरिशः उसके प्रकृत स्वरूप का कथन करते हैं। पाँचवें शीर्षक के अन्तर्गत सरस्वती की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है। **वाजिनीवती**, **पावका**, **घृताची पारावतघ्नी**, **चित्रायुः**, **हिरण्यवर्तनी**, **असुर्या**, **धरुणमायसी पूः** और **अकवारी** इसके विशेष व्यक्तित्व का ख्यापन करते हैं। छठें शीर्षक के अन्तर्गत इसका मित्र, दक्ष, वरुण, सोम, अश्विन्, मरुत्, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, रुद्र, पूषन्, पर्जन्य, बृहस्पति, अर्यमा, वायु, वाज, वात, पवमान, अज–एकपाद्, विश्वेदेवा, विभु, आदित्य, आपः आदि से सामान्य सम्बन्ध दिखाया गया है। **मरुत्सख्या, मरुत्वती** और **मरुत्सु भारती** से मरुतों के साथ सरस्वती का एक विशेष सम्बन्ध ज्ञात होता है। **'वृषणः पत्नीः'** से सरस्वती का इन्द्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है, क्योंकि वह माध्यमिका देवी-रूप से इन्द्र को वृत्र-हनन में सहायता प्रदान करती है। वाजसनेयि-संहिता सरस्वती को अश्विनों की पत्नी घोषित करती है। सरस्वती का कतिपय स्त्री देवियों के साथ सामान्य रूप से वर्णन हुआ है, परन्तु वह **इला** तथा **भारती** के साथ ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक् बनाती है। अन्त में सरस्वती का सरस्वान् से सम्बन्ध दिखाया गया है। सरस्वान् का अर्थ नदी-देवता, बादल, आदित्य, समुद्र इत्यादि किया गया है तथा इस रूप में वह सरस्वती का पति है।

तीसरा अध्याय **'यजुर्वेद में सरस्वती का स्वरूप'** है। **ऋग्वेद** की भाँति यहाँ भी सरस्वती के भौतिक रूप को सर्वप्रथम दिखाया गया है। तदनन्तर इसकी विशिष्ट उपाधियों का विवेचन किया गया है। इन उपाधियों में **यशोभगिनी**, **हविष्मती**, **सुदुघा** और **जागृवि** प्रमुख हैं। तदनन्तर सरस्वती को एक चिकित्सिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध में **सौत्रामणि** तथा **भेषज यज्ञों** का वर्णन किया गया है। इन्द्र सोम का अत्यन्त प्रेमी है। जब वह सोम का अधिक पान कर लेता है, तब वह उसके मद से प्रभावित हो जाता है। देवता उसके इस मद का नाश **'सौत्रामणि यज्ञ'** से करते हैं, क्योंकि यह सोम के कुप्रभाव को दूर करता है। **'भेषज यज्ञ'** का तात्पर्य यह हैं कि जब नमुचि विश्वासघात के द्वारा इन्द्र के मद्य का अपहरण कर लेता है, तब वह शारीरिक हानि को प्राप्त होता है। सरस्वती तथा अश्विन् उसकी चिकित्सा करते हैं। तदनन्तर इन्द्र शरीर तथा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है। चौथे शीर्षक के अन्तर्गत सरस्वती का सारस्वत से सम्बन्ध दिखाया गया है। यहाँ सारस्वत को सरस्वान् के समकक्ष समझना चाहिये। अन्त में सरस्वती को **'मिल्स काउ'** अर्थात् एक दुधारु गाय के रूप में

चित्रित किया गया है। उसे यह उपाधि उसके दयालु स्वभाव तथा अन्यों के प्रति वत्सलता के कारण दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय का नाम '**अथर्ववेद में सरस्वती का स्वरूप**' है। हम सामान्यतः जानते हैं कि **अथर्ववेद** में अनेक ओषधियों तथा औषधों का वर्णन है। इन ओषधियों तथा औषधों का विभिन्न देवों से सम्बन्ध है। इस अध्याय के प्रथम शीर्षक में सरस्वती को चिकित्सा-विद्या से सम्बद्ध करते हुए स्तवन किया गया है कि वह अग्नि, सविता तथा बृहस्पति के साथ मनुष्य की खोई शक्ति को लाए तथा थके अङ्गों को धनुष के समान दृढ बनाये। इस सम्बन्ध में कतिपय जड़ी-बूटियों का वर्णन किया गया है, जिनका देवों से सामान्य सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है। **अथर्ववेद** के एक मंत्र में बताया गया है कि जड़ी-बूटी असुरों की पुत्री हैं, देवों की बहन हैं तथा यह स्वर्ग और पृथिवी से उत्पन्न हुई हैं। शरीर में अनेक रोग के कीटाणु हैं। वे हमारे शरीर को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं, परन्तु देव हमारे शरीर की रक्षा सतत् करते हैं, अन्यथा किसी समय शरीर-पात हो सकता है। हम विभिन्न रोगों को ओषधियों के सेवन से दूर करते हैं, क्योंकि उनका विभिन्न देवों से सम्बन्ध है तथा देवों के अंशों का प्रभाव इन ओषधियों पर है। दूसरे शीर्षक में धन से आने वाली अनेक बुराइयाँ बताई गई हैं। इन बुराइयों के कारण मनुष्य अपना नैतिक तथा चारित्रिक मूल्य खो देता है। धन की कमी तथा आधिक्य अनेक आपदाओं को लाता है। इस सम्बन्ध में **अथर्ववेद** के कतिपय मंत्रों में सम्पत्ति के स्वरूप तथा बुराइयों का मनोहारी वर्णन है। धन के कारण मनुष्य में अहङ्कार आ जाता है। वह दूसरों के प्रति कठोर हो जाता है, फलतः इस वेद में मनुष्य को उपदेश दिया गया है कि सरस्वती की शरण में जाये, जिससे उसमें कोमल विचार तथा सत्य वाणी जन्म लें। तीसरे शीर्षक में सरस्वती का रक्षा-कार्य प्रदर्शित है। चौथे शीर्षक में सरस्वती तथा मनुष्य की दैवी शक्ति का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न देवों की शक्तियों का वर्णन करने के पश्चात् सरस्वती से प्रार्थना की गई है कि वह मनुष्य को आवश्यक वायु तथा श्वास प्रदान करे। पाँचवाँ शीर्षक सरस्वती तथा विवाह सम्बन्धी है। इस प्रसङ्ग में दो सूक्तों को प्रस्तुत किया गया है। प्रथम सूक्त में सूर्या को अपने पति-गृह गमन करते हुए प्रस्तुत किया गया है। इस दैवी विवाह के माध्यम से लौकिक विवाह की ओर संकेत किया गया है तथा उसके लिए आदर्श प्रस्तुत किया गया है। दूसरे सूक्त में वधू को शिक्षा दी गई है कि वहअपने पति को विष्णु के समान समझे। इस प्रसङ्ग में सरस्वती तथा सिनीवाली का वर्णन मिलता है। इनसे प्रार्थना की गई है कि ये देवियाँ वधू को सन्तान तथा सौभाग्य प्रदान करें। तदनन्तर सरस्वती को एकता और मित्रता लाने वाली बताया गया है। आगे सरस्वती का कृषि से सम्बन्ध दिखाया गया है। इस सन्दर्भ से सरस्वती को नदी-रूप से प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि इसका जल तथा इसके आस-पास की भूमि कृषि के लिए अत्यन्त अनुकूल है। यहाँ इन्द्र को हल का स्वामी तथा मरुतों को कृषक-रूप में प्रस्तुत कर

कृषि-कार्म को उत्तम बताया गया है । अन्त में अथर्ववैदिक देवियों का त्रिक् प्रदर्शित है ।

पञ्चम अध्याय **'ब्राह्मणों में सरस्वती का स्वरूप'** है । इसमें सर्वप्रथम वाक् पर विचार किया गया है तथा वाक् पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से प्रकाश डाला गया है । तदनन्तर वाक् पर ऋग्वैदिक तथा ब्राह्मणिक दृष्टियों से विचार किया गया है । ब्राह्मणिक प्रङ्गगों से **ऐतरेय** तथा **शतपथब्राह्मणों** के दो आख्यान प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे वाक् की दिव्यता प्रगट होती है तथा देवों का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध ज्ञात होता है । यहाँ तीसरे शीर्षक में सरस्वती की कतिपय उपाधियों का विवेचन किया गया है । इन उपाधियों में **वैशम्भल्या, सत्यवाक्, सुमृडीका, सुभगा, वाजिनीवती** और **पावका** मुख्य हैं । इसके बाद सरस्वती तथा सरस्वान् का सम्बन्ध निरूपित है । तदनन्तर ब्राह्मणिक **प्रसङ्गों** से वाक् के विभिन्न स्वरूपों पर विचार किया गया है । वहाँ सर्वप्रथम दिखाया गया है कि सरस्वती एक नदी थी । जल की अत्यन्त पवित्रता के कारण वह वाक् तथा वाक् की देवी बनी । विश्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त भी वाक् से सम्बद्ध है । इसको एक उदाहरण से समझाया गया है । गायत्री आठ अक्षरों वाली होती है । गायत्री के ये आठ अक्षर प्रजापति के आठ क्षरण-व्यापार ही हैं, जिस समय वह सृष्टि करना चाहते थे । ब्राह्मण-काल यज्ञ-याग प्रधान काल था । यज्ञों में वाणी की प्रमुखता होती है । प्रायः सभी **ब्राह्मणों** ने एक स्वर से सरस्वती को **'वाग्वै सरस्वती'** माना है । ऐसे ब्राह्मणों में **शतपथ, गोपथ, ताण्ड्य, ऐतरेय, शाङ्खायन, तैत्तिरीय** तथा **ऐतरेय-आरण्यक** प्रमुख हैं ।

छठें अध्याय का नाम **'सरस्वती का पुराणों में स्थान'** है । यहाँ सर्वप्रथम सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति दिखाई गई है । **ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य, पद्म, वायु,** और **ब्रह्माण्ड पुराण** विभिन्न प्रकार से सरस्वती की उत्पत्ति प्रस्तुत करते हैं । तदनन्तर सरस्वती के रङ्ग (Colour) पर विचार किया गया है तथा उसे श्वेत वर्णा, श्यामा तथा नीलकण्ठी बताया गया है । इन वर्णों के कथन से उसके आन्तरिक गुणों पर प्रकाश डाला गया है । ब्राह्मणिक सरस्वती तो श्वेत वर्ण है, क्योंकि उसे **श्वेतभुजा, श्वेताङ्गी,** आदि कहा गया है, परन्तु बौद्ध तथा जैन धर्मों में भी अनेक विद्या की देवियाँ हैं, अत एव इस प्रसङ्ग से उन पर भी विचार किया गया है । **श्रीविद्यार्णवतंत्र** में सरस्वती को **नीलसरस्वती** कहा गया है । तदनन्तर सरस्वती के वाहनों पर विचार किया गया है । ब्राह्मणिक सरस्वती का वाहन हंस है, परन्तु जैन धर्म में अनेक विद्या की देवियाँ हैं । मोर, गाय, हाथी, गरुड, कोयल, हिरण, कच्छप, मनुष्य, घड़ियाल आदि को उन देवियों का वाहन माना गया । वाहनों के विस्तृत विवेचन के पश्चात् हंस तथा मोर का प्रतीकार्थ दिखाया गया है । हंस वस्तुतः जीवात्मा तथा परमात्मा के एकत्व का प्रतिनिधित्व करता है । मोर यज्ञ से सरस्वती के निकटतम सम्बन्ध को अभिव्यक्त करता है । तदनन्तर सरस्वती की पौराणिक प्रतिमा का विवेचन है। यहाँ **मत्स्य** तथा **विष्णुधर्मोत्तर पुराणों** के मत उद्धृत हैं । **अग्निपुराण** का निर्देश है कि सरस्वती तथा सावित्री की प्रतिमाएँ ब्रह्मा की मूर्ति

के बायें तथा दाहिने ओर बनानी चाहिये। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** के अनुसार सावित्री को बायें दिखाया गया है। पुराणों में सरस्वती के मुख-निर्माण का विवेचन नहीं मिलता है, परन्तु **मानसार** में उसे '**दशताल**' मान के अनुसार बनाने का विधान मिलता है। तदनन्तर सरस्वती के हाथों के निर्माण, हाथों की संख्या तथा हाथों में धृत पदार्थों का विवेचन है। सामान्यतः सरस्वती के चार हाथ होते हैं। कहीं-कहीं उसे वीणा तथा पुस्तक धारिणी कहकर दो हाथों वाली बताया गया है। जैन धर्म में विद्या-देवियों के हाथों की संख्या आठ तथा दस तक पहुँच गई है। सरस्वती के चार हाथ चारो वेदों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सरस्वती के चारो हाथों में निक्षिप्त पुस्तक, वीणा, कमण्डलु तथा अक्षमाला विभिन्न तथ्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुस्तक तथा कमण्डलु समस्त शास्त्रों के सार का प्रतिनिधित्व करते हैं। वीणा परम संसिद्धि की प्रतीक है। अक्षमाला समय की गति को नापने का साधन है। इस निरीक्षण के उपरान्त सरस्वती का भौतिक रूप प्रस्तुत किया गया है। इस रूप में उसे एक नदी-रूप में प्रस्तुत किया गया है। सरस्वती नदी क्यों बनी ? इस सम्बन्ध में एक पौराणिक आख्यान विस्तार से वर्णित है। इसके पश्चात् सरस्वती के पवित्रांश पर विचार किया गया है तथा उसे **पुण्यतोया, पुण्यजला, शुभ्रा, पुण्या, अतिपुण्या** आदि कहा गया है। तदनन्तर सरस्वती की पौराणिक उपाधियों का विस्तृत विवेचन है। तत्पश्चात् सरस्वती के विवाह पर प्रकाश डाला गया है तथा उसे **ब्रह्मा, धर्मराज, मनु, विष्णु, आदित्य** तथा **गणपति** से सम्बद्ध दिखाया गया है। सरस्वती के विवाह के पश्चात् उसकी सन्तानों का विवेचन है। उसकी सन्तानों में **सारस्वत, स्वायंभुव मनु, ऋषि, प्रजापति** आदि हैं।

इस शोध-प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय '**लौकिक साहित्य में सरस्वती का स्वरूप**' हैं। यहाँ केवल प्रमुख लेखकों तथा नाट्यकारों की कृतियों के माध्यम से सरस्वती के स्वरूपों को निहारने का प्रयास किया गया है। ऐसे लेखकों में कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, भवभूति, दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, राजशेखर, भर्तृहरि, बिल्हण और कल्हण को लिया गया है। इन्होंने विभिन्न प्रसङ्गों में सरस्वती का रूप चित्रित किया हैं। ऐसा करना आवश्यक था, क्योंकि हम प्रायः इनकी कृतियों को पढ़ते हैं और बहुत सी सरस्वती-सम्बन्धी बातों को जानते हैं, परन्तु उनकी क्रमबद्धता से परिचित नहीं हैं अथवा बहुत गहराई में नहीं गये हैं। इनकी कृतियों के अध्ययन से सरस्वती के विभिन्न पक्षों का हमें सहज में ही ज्ञान हो जाता है।

इस शोध-प्रबन्ध का अन्तिम भाग '**परिशिष्ट-रूप**' में रखा गया हैं। इसके द्वारा सरस्वती की ग्रीस तथा रोम की पौराणिक कथा में वर्णित कतिपय देवियों के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है। भारतीय पौराणिक कथा बहुदेववाद है तथा ग्रीस तथा रोम की पौराणिक कथा भी बहुदेववाद है, अत एव इनमें पारस्परिक अनेक समतायें सामान्यतः तथा एक-एक देव एवं देवी को लेकर भी पाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में रोमन देवी मिनर्वा (**Minerva**) है। इसे वहाँ कलाओं (**Arts**), व्यापार, स्मृति

तथा युद्ध की देवी माना गया है। सरस्वती भी सभी कलाओं (**Arts**) की देवी मानी जाती है। यह स्मृति (बुद्धि आदि) की देवी भी है। इसके अतिरिक्त काली (चण्डी) प्रमुख रूप से एक स्त्री के रूप से युद्ध की देवी मानी जाती है, परन्तु वेदों में सरस्वती के सौम्य तथा असौम्य दो रूप पाये जाते हैं। वह अपने असौम्य रूप से अनेक भयङ्कर कार्य करती है। ऐसे कार्यों में वृत्र-हनन तथा इन्द्र-साहाय्य प्रमुख हैं। इस प्रकार सरस्वती '**मिनर्वा**' के समकक्ष आ आती है।

सरस्वती का ग्रीक म्युज़ेज के साथ पर्याप्त साम्य दिखाई देता है। **ऋग्वेद** में स्वतः म्यूज़ की धारणा निहित है। इस सम्बन्ध में **ऋग्वेद** में **सूनृता, सूर्या** आदि का नाम लिया जा सकता है। **ऋग्वेद** में सूर्या सर्वप्रथम कविता की देवी मानी जाती थी, परन्तु बाद में उसका कविता से तादात्म्य स्थापित हो गया तथा सरस्वती कविता की देवी बन गई। ग्रीक की नौ म्यूज़ेज इस प्रकार हैं—(1) **Clio,** (**2**) **Etcrpe,** (3) **Thalia,** (4) **Melpomene,** (5) **Tersichore,** (6) **Erato,** (7) **Polymnia,** (8) **Urania,** (9) **Calliope.** सूनृता, वार्कार्या, सूर्या, ससर्परी, ब्राह्मी, भारती आदि इन म्युज़ेज के समकक्ष हैं। इस प्रकार यह अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

—२—

वाणी के चतुर्विध-रूप

सामान्य-रूप से वाणी का विश्लेषण करना बड़ा कठिन है। प्रायः सभी धर्मों में वाणी की महत्ता स्वीकार की गई है।[1] वैदिक काल में वाणी का गौरव वेदों के अध्ययन से भली-भाँति जाना जा सकता है, परन्तु इतनी बात अवश्य है कि यहाँ वह बड़ी गूढ तथा रहस्यमय है।[2] ब्राह्मणकालीन युग में इसका स्वरूप कुछ स्पष्ट हो गया है, क्योंकि यह युग यज्ञ-याग प्रधान है। पुनर्जागरण का है और यहाँ वाणी अपना स्वरूप स्पष्ट करती हुई दिखाई देती है। यहीं वाणी का वाक् तथा वाग्देवी के साथ तादात्म्य स्थापित हो गया है—'**वाग्वै सरस्वती**'।[3] यहाँ मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर वाणी के विवेचन का भी आभास मिलता है। वाणी (वाक्) मनरूप है[4] तथा मन का व्यक्तरूप ही वाणी है। मन अपने साम्यावस्था में 'रस' तथा 'बल' से परिपूर्ण शान्त रहता है। उस समय उसमें कोई प्रक्रिया नहीं होती है, लेकिन जिस समय मन में किसी विचार के प्रकटीकरण की तनिक भी इच्छा जागृत होती है, वह मन ही श्वास में परिवर्तित हो जाता है। जब बलाधिक्य तीव्र होता है, तब वह वाक् (वाणी) के माध्यम से व्यक्त हो जाता है।[5] वाक् की विशद् विधिवत् विविध व्याख्या **शतपथ**, **गोपथ**, **ताण्ड्य**, **ऐतरेय**, **शाङ्खायन**, **तैत्तिरीय**, **ऐतरेयारण्यक** आदि में की गई है।

औपनिषदिक काल में वाणी का दार्शनिक रूप लक्षित होता है। यहाँ यह श्वास का रूप धारण करती हुई इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना के माध्यम से 'योगविद्या' को जन्म देती है। हम ने पहले बताया है कि वाणी (वाक्) श्वास का प्रस्फुटित रूप है। श्वास के संयमन से मनुष्य अल्पायु तथा दीर्घायु है। योग-विद्या में इसी श्वास-प्रक्रिया को इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना द्वारा संचालित किया जाता है।

पौराणिक युग में वाणी (वाक्) का विविध रूप लक्षित होता है। इस युग में वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। वह वाग्रूप भी है तथा उसे अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया है।[6]

ऋग्वैदिक काल में वाक् तथा उस की देवी का स्वरूप अस्पष्ट है। यहाँ दोनों का सम्बन्ध निश्चित करना बड़ा कठिन है। वाक् की सत्ता कहीं नितान्त स्वतंत्र दिखाई देती है, तो कहीं उस की देवी की इयत्ता अलग है। यहाँ बहुत सी देवियाँ हैं, जिनमें मुख्य अदिति[7], कुहू[8], सिनीवाली[9], राका[10], इन्द्राणी[11], वरुणानी[12], ग्ना:[13], पृथ्वी[14] तथा पुरन्धी[15] हैं। इन में से एक दूसरे का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये अपने-अपने क्षेत्र की प्रधान देवियाँ हैं तथा इन का आवाहन सरस्वती के साथ कतिपय ऋग्वैदिक मन्त्रों में स्वतंत्र रूप से हुआ है।

१. ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक्

जिस प्रकार वैदिकेतर साहित्य में लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती तीन देवियों का त्रिक् बनता है, उसी प्रकार ऋग्वैदिक काल में सरस्वती, इडा तथा भारती तीन देवियाँ भी त्रिक् बनाती हैं। इन का पारस्परिक बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन देवियों के पीछे कई प्रकार के भाव छिपे हुए हैं। वे अपने भिन्न व्यक्तित्व के कारण अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती हैं तथा उन में कुछ गुण ऐसे भी हैं, जिनके आधार पर वे भिन्न प्रतीत होती हुई भी एक हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हमारे आदि ऋषि आद्यन्त प्रकृतिवादी नहीं थे, अपितु प्रकृति के प्रति उनका अपना एक विशेष प्रकार का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण था, तथा वे उन के आधार पर प्रकृति के भिन्न-भिन्न पदार्थों को भिन्न-भिन्न प्रतीकों का रूप दे रखा था। फलतः उनसे बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव की अपेक्षा सदैव बनी रही। स्थूल से सूक्ष्म दिशा की ओर जाना स्वभावानुकूल था।

इडा ऋग्वेद में गौ से प्राप्त होने वाले घी तथा दूध का मानवीकृत हवनरूप है अत एव वह गौ से प्राप्त होने वाले धन का प्रतिनिधित्व करती है। वह सरस्वती की भाँति 'धेनुरूप'[१६] है। ऋग्वेद में इसके कई गुण बताये गये हैं। यह प्रत्येक ऋतु में नित्य फल धारण करती है[१७]। गौ रूप से वह अन्य पशुओं में सर्वश्रेष्ठ है, अत एव उसे पशुओं की माँ की संज्ञा दी गई है।[१८] उसके हाथ तथा घर घृतयुक्त बताये गये हैं। यह जहाँ रहती है, वहाँ अग्नि शत्रुओं से रक्षा करते हैं तथा कल्याण प्रदान करते हैं[१९]। हाथ के समान इसके पग भी घृतयुक्त हैं[२०]। घृत प्रफुल्लता, बहुलता तथा आधिक्य का द्योतक है, अत एव इस का प्रतिनिधित्व करने वाली इडा को प्रफुल्लता अथवा समृद्धि की देवी माना जा सकता है। इस क्षेत्र पर इसका पूर्ण आधिपत्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि **ऋग्वेद** में अन्य अनेक देवियाँ हैं, जिनका व्यक्तित्व इडा से अधिक निखरा हुआ है और वे स्पष्टतर रूप से शान्ति, कल्याण, समृद्धि तथा आधिक्य प्रदान करने वाली हैं[२१]। अस्तु।

भारती इडा के समान ही यज्ञ की देवी है[२२]। ऋग्वैदिक मंत्रों में इसका आवाहन प्रायः सामान्य-रूप से स्वतंत्र हुआ है[२३], परन्तु कुछ स्थलों पर यह सरस्वती तथा इडा से मिलकर तीन देवियों का त्रिक् बनाती है। वैदिकेतर साहित्य में इनमें महान् परिवर्तन हो जाता है। ये आपस में मिल जाती हैं तथा यहाँ एक दूसरा नाम पर्यायरूप में आता है। चारो वेदों में **अथर्ववेद** को अर्वाचीन माना गया हैं। यहाँ एक स्थल पर '**तिसः सरस्वतीः**' का प्रसङ्ग आता है।[२४] भाष्यकारों ने इसका अर्थ सरस्वती, इडा तथा भारती किया है। ऐसा जान पड़ता है कि वैदिकेतर काल प्रारम्भ होने के पूर्व स्वयं वैदिक काल का अन्त होते-होते इन देवियों में तादात्म्य स्थापित हो गया था। इस तादात्म्य का मूलाधार इन के पीछे छिपी हुई कोई सामान्य अथवा विशेष कल्पना का साम्य अवश्य रहा होगा। इस साम्य को वेदों से ही ढूँढने पर ज्ञात होता है कि ये देवियाँ एक शृङ्खला में आबद्ध हैं तथा वे अन्यान्य की अपेक्षा रखती हैं। ऐसा होने

पर भी वे स्वतंत्र हैं तथा उनका कार्य भी स्वतंत्र है, परन्तु उनका उद्गम एक है। अन्ततोगत्वा वे एक भी हैं।

२. सरस्वती, इडा तथा भारती वाणी के त्रिविध रूप :

ऋग्वेद में स्पष्टतः सरस्वती इडा तथा भारती को देवियों के रूप में स्वीकार किया गया है। भाष्यकारों ने अपने-अपने ढङ्ग से इनका अर्थ अलग-अलग किया है। अर्थ जो अनर्थ न हो, सदा श्लाघ्य होता है। फलतः व्युत्पन्न भाष्यकार ऊहा से सदैव दूर रहते हैं तथा वे जिन अर्थ की स्थापत्ति करते हैं, संसार उनका आदर करता है। **ऋग्वेद** के भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी, माधवाचार्य, सायण, यास्क आदि प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से संसार को लाभान्वित किया है। प्रकृत विषय के प्रसङ्ग में वाक्यपदीय का एक श्लोक उद्धृत है :

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम् ।
अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम् । ब्र० का० १४३ ॥

इस श्लोक में वाणी के तीन रूप बताये गये हैं, जिनके नाम वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती हैं। इनके भी विभिन्न भेद हैं। इनके स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं। पुनः पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के स्थूला, सूक्ष्मा तथा परा रूप से तीन-तीन भेद और हैं। इस प्रकार कुल नौ भेद हुए। इन नौ भेदों में पूर्व तीन वाणियों का सम्मिश्रण करने पर वाणी के बारह प्रकार होते हैं। यह विभाजन आचार्य भर्तृहरि के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका विवेचन उन्होंने वाक्यपदीय में सविस्तार किया है। वाणी के इस विभाजन-प्रकार के विषय में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। वैयाकरणाचार्य वाणी के तीन भेद स्वीकार करते हैं, परन्तु शैव सिद्धान्तों के मत से केवल परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी चार वाणियाँ हैं, अत एव इस विचार-वैभिन्य का समाधान आवश्यक है।

ऋग्वेद में भारती, सरस्वती तथा इडा से तीन देवियों का त्रिक् बनता है। **ऋग्वेद** में स्पष्टरूप से यह नहीं बताया गया है कि कौन देवी किस वाणी का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ सूक्ष्म सङ्केतमात्र है। सायणाचार्य ने इन्हें वाक्, वाग्देवी तथा त्रिस्थाना माना है। इनका कथन है कि भारती, सरस्वती तथा इडा वाक्, (वाणी) की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं और वे अपने भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व से द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक तथा पृथिवी-लोक को सुशोभित करती हैं।[२५] इन्होंने प्रकृतिपरक व्याख्या के आधार पर भारती को **'द्युस्थाना वाक्'**[२६] स्वीकार कर इसे **'रश्मिरूपा'**[२७] कहा है। सरस्वती को इन्होंने **"माध्यमिका वाक्'**[२८] कहा है, क्योंकि यह स्तनितादिरूपा है। यह नितान्त सत्य भी है कि **'स्तनित'** शब्द आकाश-व्यापी है। वायु ध्वनि का वाहक है। सरस्वती को वायुरूपा मानकर इसे वायु की संचालिका कहा गया है।[२९] इडा पृथिवी-लोक की वाणी है।[३०]

वाणी अपने मूलरूप में एक है। यह एक चेतना का प्रतीक है, जिसकी कई अवस्थाएँ होती हैं। इन्हीं अवस्थाओं के कारण यह भिन्न-भिन्न रूपों को धारण करती है,

अत एव इसके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं । भू, भुवः तथा स्वः की देवी होने के कारण इसका नाम इडा, सरस्वती तथा भारती है तथा ये तीनों पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक की वाणी-स्वरूप हैं ।[३१] इन्हीं का एक अन्य नाम पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी है । 'पश्यन्ती' भारती, 'मध्यमा' सरस्वती तथा 'वैखरी' इडा का प्रतिनिधित्व करती है । यह वाणी का एक बाह्य रूप है । इसकी यह व्याख्या वैदिक प्रकृतिपरक व्याख्या के सर्वथा अनुकूल है । मनोवैज्ञानिक व्याख्या के आधार पर इसी वाणी की तीन अवस्थाएँ हैं । प्रस्फुटित वाणी एक ही नादात्मिका वाक् के भिन्न-भिन्न रूपों को धारण कर मनुष्य के आभास अथवा ज्ञान-पथ में आने के कारण भी पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के नाम से व्यवहृत होती है । 'नाद' अत्यन्त सूक्ष्म होता है । सूक्ष्मवशात् इसकी विवक्षा नहीं की जा सकती । यह वाणी का द्वितीय चरण है । इसकी अवस्था हृदय में आगमनमात्र होती है और केवल योगी लोग ही इसका दर्शन कर सकते हैं । वाणी के इसी रूप का नाम पश्यन्ती हैं । जब वाणी हृदय में आभासमात्र दिखाती है, तब इसे 'मध्यमा'—अक्षरशः हृदय-मध्य में उदित होने के कारण 'मध्यमा' कहा जाता है । जब वाणी व्यक्त हो जाती है, अर्थात् जब इसमें व्यक्तता की तीव्रता आ जाती हैं तथा तालु, ओष्ट आदि माध्यमों से उच्चरित होकर मुख से बाहर निकलती है, तब इसे 'वैखरी' कहा जाता है ।[३२]

३. वाणी के चार चरण और उनका दार्शनिक विवेचन :

ऊपर हम ने वाणी के तीन चरण अथवा रूप का विवेचन किया है । परमार्थतः एक ही वाणी को भारती, सरस्वती तथा इडा अथवा पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के रूप में बताया गया है और वे अन्ततोगत्वा एक हैं । कुछ स्थलों पर वाणी के 'चार रूप' होने का सङ्केत मिलता है । हम ने पहले बताया है कि इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । ऋग्वेद में कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ वाणी के 'चार रूप' होने का संकेत है तथा इसे केवल सङ्केतमात्र ही नहीं माना जा सकता है । ऋग्वैदिक एक मन्त्र में स्पष्टरूप से वाणी के 'चार रूप' बताये गये हैं ।

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचं मनुष्या वदन्ति ॥
ऋ० १.१६४.४५

वाक् के चार पद हैं, वे गूढ हैं और अंधकार में हैं । उसे मनीषिगण ही जान सकते हैं । धरती के मनुष्य वाक् के तुरीय अर्थात् चतुर्थ पद को ही समझ सकते हैं तथा बोल सकते हैं । अन्यत्र **'चत्वारि शृङ्गा'**[३३] से इसी ओर सङ्केत जान पड़ता है, अत एव जो लोग वाणी के केवल तीन भेद को स्वीकार कर चतुर्थ का खण्डन करते हैं, उनका मत सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता । फलत. पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के अतिरिक्त वाणी का एक अन्य भेद भी है, जिसे 'परा' की संज्ञा दी जाती है । **ऋग्वेद** के प्रसङ्ग १.१६४.४५ में **'चत्वारि'** पद की व्याख्या करते समय सायणाचार्य ने लिखा हैं कि **"परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चत्वारीति । एकैव नादात्मिका वाक् मूलाधारा-**

दुदिता सती परेत्युच्यते । नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात्", नादरूपात्मिका वाक् के एक ही मूलभूत स्रोत से उद्भूत होने के वारण उसका प्रथम पद 'परारूप' से स्वयं ही कारणरूप है, अत एव उसे युक्त ही 'परा' की संज्ञा दी गई है । वह अत्यन्त सूक्ष्म है। फलतः उसका निरूपण नहीं किया जा सकता । वह 'ब्रह्मरूप' अथवा 'ब्रह्ममय' है । वैदिकेतर काल में ब्रह्मा को सृष्टि का कर्त्ता माना गया है, परन्तु वेदों में 'ब्रह्मा' नाम का सर्वथा अभाव हैं । यहाँ पर ब्रह्मणस्पति, वाचस्पति आदि को प्रधानता दी गयी है । पौराणिक युग में सृष्टि-कर्त्ता को ब्रह्मा कहा गया हैं । वैदिक काल में यही ब्रह्मा ब्रह्म, ब्रह्मणस्पति तथा वाचस्पति कहा गया है । औपनिषदिक काल में यही बृहस्पति अथवा ब्रह्मन् (**बृह् वर्धने आच्छादने वा**) नाम से पुकारा जाता है । यह वाक् का स्वामी है । पौराणिक युग में सरस्वती को वाक्, वाग्देवी तथा वाग्रूप स्वीकार किया गया हैं । यहीं सरस्वती को ब्रह्मा के मुखसे उत्पन्न हुई बताया गया है[३४], अत एव वह ब्रह्मा वाग्रूप सरस्वती का स्वामी है तथा अधिपति है । तद्वत् भाव अन्य ब्रह्मणस्पति, वाचस्पति, बृहस्पति, ब्रह्मन् आदि से ध्वनित होता है । वागाम्भृणी सूक्त के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाक् का कितना महत्त्व हैं । यह स्वयं ही अपनी तुलना रुद्र, आदित्य, विश्वे देवा, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अश्विन्, सोम, त्वष्टा, पूषण, भग आदि से करने में क्षम है । यहीं अन्य उपलब्ध प्रसङ्गों से उसके द्वारा ही जगत्सृष्टि का सिद्धान्त प्रकाश में आता है ।

ऋग्वेद में वाक् वाणी का मानवीकृत रूप हैं, जिसके द्वारा ज्ञान की किरण मनुष्य तक पहुँची । यह सर्वप्रथम ऋषियों में प्रविष्ट हुई तथा उनके माध्यम से ज्ञान का प्रसार हुआ । इसकी सृष्टि देवों ने की । इसी कारण वाक् को 'दिव्य' कहा गया है । इसे 'कामधेनु' की संज्ञा दी गई है, क्योंकि यह जल तथा जीविका का साधन है[३५] । ब्राह्मण ग्रंथों में वाक् का दिव्यत्व अत्यन्त निखरा हुआ है । यहाँ यह देवों के अत्यन्त निकट आ गई है । यह वेदों की माँ है और विश्व की जननी है ।[३६] इससे वाक् की शक्ति तथा प्रभुता का अनुमान लगाया जा सकता है । प्रजापति को विश्व का स्वामी तथा कर्त्ता कहा जाता है । हम ने पहले बताया है कि प्रजापति, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति तथा ब्रह्मन् तत्त्वतः एक हैं । वाक् से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, अत एव ये वाक् के स्वामी अथवा ईश हैं **शतपथब्राह्मण** में विश्व की उत्पत्ति प्रजापति तथा वाक् की सहायता से बतायी गयी है । जब प्रजापति को सृष्ट्येच्छा हुई, तब उन्होंने अपने मस्तिष्क से वाक् को उत्पन्न किया । तदनन्तर उस वाक् से जल का सर्जन हुआ । इस सम्बन्ध में प्रजापति तथा वाक् के मध्य मैथुन सम्बन्ध हुआ, फलतः वाक् ने गर्भ धारण किया । वह प्रजापति से विलग हो गई और इस संसार की सृष्टि की । तदनन्तर प्रजापति में प्रविष्ट हो गई ।[३७] गायत्री वाग्रूप है । इसका क्षरण सृष्टि की इच्छा से आठ बार हुआ । इसका यह क्षरण प्रजापति का क्षरण-व्यापार ही है ।[३८]

इस प्रकार वाक् प्रजापति-रूप है । प्रजापति से विलग होने पर इसकी स्वतंत्र सत्ता है । यह सृष्टि-कर्त्ता की इच्छा-स्वरूप है और उसकी इच्छा ही वाणी-रूप में व्यक्त

होती है ।[३९] इसी प्रकार वाणी (वाक्) के जो चार पद बताये गये हैं, वे अन्ततोगत्वा एक हैं । पृथिवी पर जो वाणी बोली जाती है, उसका नाम वैखरी है, परन्तु सृष्टि के आदि में यह अस्तित्व में नहीं थी । केवल 'परा' थी और यह चेतनास्वरूपा मानी गयी है । यह ब्रह्ममय है, अत एव इसका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । यह एक परम शक्तिस्वरूप है । यह इच्छा, ज्ञान तथा कार्य की स्वामिनी है । 'परा' इन शक्तियों की अतिशायिनी है तथा इनके सदृश भी है ।[४०] इस सादृश्य का अङ्कुर स्वतः वेदों में उपलब्ध है । '**तिस्रः सरस्वती**.'[४१] से भारती, सरस्वती तथा इडा का सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है और इनसे अनन्यापेक्ष्य की भावना से पश्यन्ती (भारती), मध्यमा (सरस्वती) तथा वैखरी (इडा) नामक वाणियों का तादात्म्य प्रस्तुत किया गया है । **ऋग्वेद** में भी इस सामञ्जस्य का बीज मिल जाता है । यहाँ एक स्थल पर इडा, सरस्वती तथा भारती को 'अग्निमूर्ति' कहा गया है ।[४२] अग्नि पृथिवी पर सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है और यही सूर्य दिवि में आदित्य कहलाता है । भारती द्युलोक स्थायिनी है और इस प्रकार से यह आदित्य[४३] तथा मरुतों से (**मरुत्सु भारती**)[४४] सम्बद्ध है । मरुत् मध्यस्थायी हैं । उनसे सम्बद्ध होने के कारण भारती भी मध्यम-स्थाना हुई । हम ने पहले बताया है कि सरस्वती मध्यमा वाक् होने के कारण मध्यम-स्थाना है । दोनों का स्थान एक होने तथा चरित्र की लगभग समानता के कारण दोनों एक हैं । दूसरी ओर तीनों ही पृथिवी स्थायिनी अग्नि-मूर्तियों से तादात्म्य रखती हैं,[४५] अत एव तीनों एक हैं । तीनों का तादात्म्य एक अन्य उदाहरण से भली-भाँति जाना जा सकता है । श्री अरविन्द ने इडा, सरस्वती तथा भारती को दृष्टि, श्रुति तथा सत्यचेतना का विस्तार माना है ।[४६] वस्तुतः यह कल्पना ज्ञान-परक है, अत एव तीनों मूर्तियों को अनन्यापेक्ष्य की भावना से एक ही मानना चाहिए । एक अन्य ऋग्वैदिक स्थल पर सरस्वती को 'त्रिषधस्था'[४७] कहा गया है । भाष्यकारों ने इसका अर्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को प्रतिनिधित्व करने वाली किया है । जैसा कि हम ने पहले बताया है कि ये तीनों देवियाँ भू, भुवः तथा स्वः का प्रतिनिधित्व करती हैं, तद्वत् भाव '**त्रिषधस्था**' विशेषण द्वारा वाग्रूप त्रिपदा गायत्री की तुलना तथा समानता से निकाला जा सकता है ।[४८]

आभासवादियों का कथन है कि परम शक्ति-शाली एवं सर्वव्यापी आत्मन् है । वह अत्यन्त सूक्ष्म है । सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति, पालन तथा संहार का एकमात्र कारण वही है । आत्मन् अन्तिम तथ्य है । यह संसार उस अन्तिम तथ्य का प्रत्यक्षरूप है । इसे द्रव्य तथा वाणी (वाचक तथा वाच्य) रूप में विभक्त किया गया है । वाणी इस संसार के स्थूल घटना का स्वरूपमात्र नहीं है, शब्द केवल प्रतीक रूप में प्रयुक्त होते हैं । 'परा' इस अन्तिम तथ्य का नाम है और यह अत्यन्त सूक्ष्म है । इस परा के ठोस रूप का नाम 'वैखरी' है, जिसे मनुष्य बोलते तथा समझते हैं, परन्तु वैखरी तक आते-आते 'परा' की दो दशाएँ और होती हैं, जिन्हें पश्यन्ती तथा मध्यमा कहते हैं । 'पश्यन्ती' ठोस वाणी का प्रथम सोपान है । इसमें वाणी का ठोस रूप धुँधला

दृष्टिगोचर होता है और वह चेतना से कुछ अलग तथा तनिक स्पष्ट होती है। इसको इच्छा-स्वरूप माना जाता है। मध्यमा की दशा में वाणी में तत्काल स्पष्टता आ जाती है। इसमें इच्छा तथा वाणी के मध्य अन्तर स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि इस वाणी में व्यक्तता की भावना होती है, परन्तु इन दोनों के आधारों में कोई अन्तर नहीं होता है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। जैसे एक काला घट है। यहाँ घट की सत्ता अलग है और कालापन की सत्ता अलग, परन्तु घट की सत्ता कालापन से रहित नहीं है।[४९] यह वाणी का एक स्थूल विवेचन है, जो आत्मचेतना से प्रेरित है। प्रकृतिपरक व्याख्या के आधार पर इसे तीन देवियों से सम्बद्ध पूर्ववत् समझना चाहिए।

एक अन्य मत के अनुसार इडा उस पार्थिव ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है, जो हमारे जीविका का साधन है। मध्यस्थाना वाक् के रूप में सरस्वती शास्त्रोक्त उस ज्ञान का प्रतीक है, जो स्वर्ग तथा उसके परम सुख को मानवजाति के लिए प्रदान करने में समर्थ है। भारती उस स्वर्गी वाणी का ज्ञान-रूप है, जिससे 'निर्वाण' की प्राप्ति होती है।[५०]

सन्दर्भ-संकेत

(१) बाइबिल में सर्वप्रथम ही (१.३) दैवी प्रकाश (ज्ञान) तथा तदनन्तर सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन है। क़ुरआन में 'वही' द्वारा ज्ञान एवं विवेक की प्रसृति तथा अज्ञान एवं अविवेक का अन्त दिखाया गया है; (२) अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्य-हमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ ऋ० १०.१२५.१, अहं सोमाहनसं बिभर्म्यहं त्वाष्टारमुत पूषणं भगम्। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥ ऋ० १०.१२५.२; (३) श० ब्रा० २.५.४.६; ३.१.४.९,१४; ६.१.७.६; ४.२.५.१४, ६.३.२; ५.२.२.१३-१४, ३.४.३ इत्यादि; तै० ब्रा० १.३.४.५; ३.८.११.२; ऐ० ब्रा० २.२४; ३.१-२, ३७; ताण्ड्य ब्रा० २.१.२०; शा० ब्रा० ५.२; १२.८; १४.४; (४) तु० सायणाचार्यकृत श० ब्रा० ११.२.६.३ की व्याख्या : "....'अस्य' यज्ञशरीरस्य इमौ 'आधारौ' मनोवाग्रूपौ ज्ञातव्यौ। तौ क्रमेण 'सरस्वांश्च सरस्वती च' एतद्वयात्मकौ भवतः। अध्यात्मं तपोरूपासनमाह— स विद्यादिति। मम मनश्च वाक् च सरस्वत्सरस्वती रूपावाधारा-विति जानीयादित्यर्थः।" एतद्विषयक मूलपाठ श० ब्रा० ११.२.६.३ में निम्नलिखित है : "...(त्य) अनूकमेवास्य सामिधेन्यः।...मनश्चैवास्य व्वाक्चाधारौ सरस्वांश्च सरस्वती च सव्विद्यान्मनश्चैव व्वाक्चाधारौ सरस्वांश्च सरस्वती चेति।"; (५) तु० श० ब्रा० हिन्दी विज्ञान-भाष्य, भाग—२ (राजस्थान वैदिक तत्त्व-शोध-संस्थान, जयपुर, १९५६), पृ० १३५३; (६) माहेश्वरी (वा० पु० १.२३.४९); ब्रह्मयोनि (मार्क० पु० २.२०); श्रुतिलक्षण (स्क० पु० ७.३३.२२); ब्रह्माणी, ब्रह्मसदृशी (म० पु० २६१.१४); सर्वजिह्वा (मार्क० पु० २३.५७); विष्णोर्जिह्वा (वही, २३.४८);

रसना (स्क० पु० ६.४६.२६); परमेश्वरी (वही, ६.४६.२६); ब्रह्मवादिनी (म० पु० ४.२४); वागीश्वरी (ब्रह्मा० पु० ४.३९.७४); भाषा, स्वरा, अक्षरा, गिरा, भारती (स्क० पु० ६.४६.२६६); विश्वरूपा (ब्रह्मवै० पु० २.४.७३); वाग्देवता, वाग्वादिनी (वही २.४.७५); विद्याधिष्ठात्री (वही, २.४.७७); विद्यास्वरूपा (वही, २.४.७४); सर्ववर्णात्मिका (वही, २.४.७९); सर्वकण्ठवासिनी (वही, २.४.८०); जिह्वाग्रवासिनी (वही); बुधजननी (वही, २.४.८१); कविजिह्वाग्रवासिनी (वही, २.४.८२); सदम्बिका (वही, २.४.८३); गद्यपद्यवासिनी (वही); ब्रह्मस्वरूपा (वही, २.५.१०) इत्यादि; (७) ऋ० १.८९.३; ७.३९.५; १०.६५.१; (८) वही, २.३२.८; (९) वही, २.३२.८; १०.१८४.२; (१०) वही, २.३२.८; ५.४२.१२; (११) वही, २.३२.८; (१२) वही, २.३२.८; (१३) वही, ५.४६.२; ६.४९.७; (१४) वही, ८.५४.४; (१५) वही, १०.६५.१३; (१६) वही, ३.५५.१३; (१७) वही, ४.५०.८; (१८) वही, ५.४१.१९; (१९) वही, ७.१६.८; (२०) वही, १०.७०.८; (२१) प्रकृत विषय के कलेवर-विस्तार के भय से अन्य देवियों तथा देवों का वर्णन यहाँ अपेक्षणीय नहीं है। इसे वैदिक देवशास्त्र के अध्ययन से भली-भाँति जाना जा सकता है; (२२) तु० जेम्स हेस्टिङ्गस, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग-१२ (न्युयार्क, १९५४), पृ०६०७; (२३) ऋ० १.२२.१०, १४२.९, १८८.८; २.१.११, ३.८; ३.४.८, ६२.३; ७.२.८; ९.५.८; १०.११.८; (२४) अथर्व० ६.१००.१; "देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यऽदात्। तिसः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम्।"; (२५) तु० सायणाचार्यकृत व्याख्या ऋ० १.१४२.९ "... ...एतास्तिस्र स्त्रिस्थानवागभिमानिदेवताः"; (२६) वही, १.१४२.९ "भारती भरतस्यादित्यस्या सम्बन्धिनी द्युस्थाना वाक्"; (२७) वही, १.१८८.८; २.१.११; (२८) वही, १.१४२.९; "सरस्वती। सर इत्युदकनाम्। तद्वती स्तनितादिरूपा माध्यमिका च वाक्।"; (२९) वही, २.१.११: "सरस्वती सरणवान् वायुः। तत्सम्बन्धिनी एतन्नियामिका माध्यमिका", ऋग्वेद में सरस्वती को बारम्बार माध्यमिका की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। द्रष्टव्य वही, २.३०.८; ५.४३.११; ७.९.६२; १०.१७.७, ६५.१३; (३०) वही, १.१४२.९; (३१) सूर्यकान्त, सरस, सोम एण्ड सीर, ऐनल्स आफ भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, भाग—३८, (पूना, १९५८), पृ० १२७-१२८; (३२) तु० सायणाचार्यकृत व्याख्या ऋ० १.१६४.४५; "परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चत्वारीति। एकैव नादात्मिका वाक् मूला धारादुदिता सती परेत्युच्यते। नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात् सैव हृदयगामिनी पश्यन्त्युच्यते योगिभिर्द्रष्टुं शक्यत्वात्। सैव बुद्धिं गता विवक्षां प्राप्ता मध्यमेत्युच्यते। मध्ये हृदयाख्ये उदीयमानत्वात् मध्यमायाः। अथ यदा सैव वक्त्रे स्थिता ताल्वोष्ठादिव्यापारेण बहिर्निर्गच्छति तदा वैखरीत्युच्यते। एवं चत्वारि वाचः पदानि परिमितानि।"; (३३) ऋ० ४.५८.३; (३४) डॉ० रामशङ्कर भट्टाचार्य, पुराणगतवेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन (प्रयाग, १९६५), पृ० १२२, ३७८—३७९; (३५) तु० जे० डाउसन, ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू

माइथालोजी, ९वाँ संस्करण (राउटलेज एण्ड केगन पाल लण्डन, १९५७), पृ० ३२९; (३६) ऐ० आ० ३.१.६; (३७) तु० ए० बी० कीथ, दि रिलीजन एण्ड फिलासोफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषत्स, भाग-२ (लण्डन, १९२५), पृ० ४३८; जे० डाउसन, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३३०; (३८) श० ब्रा० ४.१.३.१—६; (३९) तु० ए० बी० कीथ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ४३८; (४०) के० सी० पाण्डेय, अभिनवगुप्ता, भाग-२ (चौ० वाराणसी, १९३५), पृ० ३९; (४१) अथर्व० ६.१००.१; (४२) विल्सनकृत टिप्पणी ऋ० १.१३.१; (४३) वही, १.१४२.९; (४४) वही, १.१४२.९; (४५) तु० विल्सनकृत टिप्पणी ऋ० १.१३.९; (४६) श्री अरविन्दो, ऑन द वेद (पाण्डिचेरी, १९५६), पृ० ११०; (४७) ऋ० ६.६१.१२; (४८) तु० ऐ० ब्रा० २०; (४९) तु० के० सी० पाण्डेय, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ३९-४५; (५०) सूर्यकान्त, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १२८।

सरस्वती के कतिपय ऋग्वैदिक विशेषणों की विवेचना

ऋग्वेद में सरस्वती से सम्बद्ध अनेक विशेषण प्रयुक्त हैं। उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनके विषय में हम बहुधा सुना करते हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं, जो हमारे होते हुए भी चिर नूतन एवं रहस्यमय प्रतीत होते हैं। उनका विवेचन हमारी इच्छा को क्षणिक संतुष्ट ही कर पाएगा, चिर संतोष-लाभ सहज न होगा। ये विशेषण यत्र-तत्र अपने भिन्न क्रमों एवं रूपों से 'सरस्वती' नाम को अङ्कृत करते हैं। मुख्य-रूप से ये निम्न-लिखित हैं :—

१. ऋतावरी, २. पावका, ३. घृताची, ४. अकवारी, ५. चित्रायुः, ६. हिरण्यवर्तनी, ७. घोरा, ८. वृत्रघ्नी, ९. अवित्री, १०. असुर्या, ११. पारावतघ्नी, १२. धरुणमायसी पूः, १३. विसखा इव, १४. नदीतमा, १५. देवितमा, १६. तन्यतुः, १७. आप्रप्रुषी, १८. बृहती, १९. रथ्येव, २०. इयाना, २१. राया युजा, २२. शुचिः, २३. वाजिनीवती, २४. सप्तस्वसा, २५. सप्तधातुः, २६. सप्तथी, २७. त्रिषधस्था, २८. मरुत्सखा, २९. सख्या, ३०. उत्तरा सखिभ्यः, ३१. सुभगा, ३२. वीरपत्नी, ३३. वृष्णः पत्नी, ३४. प्रियतमा, ३५. प्रिया, ३६. मरुत्वती, ३७. भद्रा, ३८. पावीरवी, अथवा ३९. पावीरवी कन्या, ४०. मयोभूः, ४१. अम्बितमा, ४२. सिंधुमाता, इत्यादि।

उपर्युक्त इन्हीं विशेषणों में से हम ने केवल चार विशेषण—१. सिंधुमाता, २. सप्तस्वसा, ३. घृताची, और ४. पावीरवी को प्रस्तुत लेख का विषय बनाया है और उन पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ विशेषण तत्कालीन सामाजिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं, जिसका सङ्केत स्थानानुसार कर दिया गया है।

१. सिंधुमाता

पूरे **ऋग्वेद** में सरस्वती के लिए यह विशेषण केवल एक बार[1] प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। श्रीमत्सायणाचार्य इसे **'अपां मातृभूता'**, ऋगर्थदीपिकाकार श्रीवेंकटार्यतनूदभव श्रीमाधव **'सिंधूनां माता'**, ग्रीफिथ 'जलार्णवों की माता' तथा गेल्डनर, जिसकी माँ सिंधु है, ऐसा अर्थ करते हैं। ये टीकाकार केवल इतने ही अर्थमात्र से संतोष-लाभ करते हैं, जबकि श्रीविल्सन के कुछ अधिक शब्द हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। उनके विचार से **'सिंधुमाता'** का अर्थ 'सिंधु की माँ है' और ये अपनी इस विचारधारा को टिप्पणी ऋ० ७.३६.६ में स्पष्ट करते हुए स्कालियास्ट के बिलकुल समीपस्थ दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्होने सरस्वती

---

१. **ऋग्वेद**, ७. ३६६

को जलों की माता माना है। इस प्रकार सरस्वती जलों की माँ है, न कि सिंधु की।

हम व्यक्तिगतरूप से इसी प्रकार की सम्मति से सहमत हैं और इस बात के पक्षपाती हैं कि **'नदी-स्तुति'** में गिनाए गए नदियों के नामों के अतिरिक्त, सरस्वती के साथ आए 'सिंधु' का अर्थ सामान्य नदी के लिये हुआ है। **'नदी-स्तुति'** के सिंधु को कभी भी सरस्वती की जन्मदात्री नहीं मान सकते हैं। इसके कई कारण हैं। सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि इसका वर्णन बहुत ही थोड़े से मंत्रों[२] में एक साधारण नदी के लिये हुआ है, जब कि सरस्वती का विशद् एवं व्यापक वर्णन, उसे बिलकुल फीका बना देता है। साथ ही **ऋग्वेद** के सरस्वती-सम्बन्धी **'नदीतमा'**[३] को लेकर सारी शंकाएँ दूर की जा सकती हैं। सरस्वती का एक विशेषण **'धरुणमायसी पूः'**[४] है, जो उसे एक स्वतन्त्र सत्ता प्रदान करने, नदियों की माता उद्घोषित करने तथा बड़े-बड़े नदी-नदों की प्रसवित्री घोषित करने तथा सैकड़ों दलीलों की एक दलील है।

पश्चिमी विद्वानों में से राथ तथा जिमर[५] जैसे विद्वान् जो सरस्वती का समन्वय 'सिंधु' से दिखाने का साहस करते हैं, उन्हीं में से उन्हीं के साथी लासेन तथा मैक्समूलर[६] सरस्वती को एक स्वतन्त्र सत्ता प्रदान करने का श्लाधनीय कदम उठाते हैं और उसे भारत की पश्चिमी सीमाओं का एक **लौहदुर्ग**[७] मानते हैं। प्रसङ्ग अधिक व्यापक और विषय दूरगामी हो जाएगा, यदि हम यहाँ प्रसङ्गात् **'धरुणमायसी पूः'** की कल्पना इस लौह-दुर्ग में न करें। यह बात बिलकुल सत्य जान पड़ती है कि सरस्वती अपने विशाल शरीर से भारत के पश्चिमी भाग में अवस्थित रह कर, देश की रक्षा करती रही हो और पश्चिम से भारत पर हमला करनेवाले बहादुर लोग, अपने उद्यम में, इसे बहुत बड़ी बाधा डालने वाली मानते रहे हों। यह अपनी विशाल एवं उच्च लहरों से मान न भरनेवाली बनकर, उन्हें अपने पार करने में चुनौती देती रही हो और उन्हें भयभीत कर सहज में उनका साहस तोड़ती रही हो। तब जाकर कहीं उसे यह गौरव प्राप्त हुआ हो कि वह एक लौह-दुर्ग कहलाए। यहाँ यह भावना

---

२. वही, १.६७.८; १.२५.५; २.११.६, २५.३-५; ३.३५.६ इत्यादि; अथर्ववेद, ३.१३.१; ४.२५.२; १०.४.१५; १३.३.५० इत्यादि। मैक्डानेल और कीथ, **वैदिक इंडेक्स**, (मोतीलाल बनारसीदास, भाग २), पृ० ४५०

३. ऋ० २.४१.१६

४. वही, ७.६५.१

मैक्डानेल और कीथ, **वैदिक इंडेक्स**, भाग २, (मोतीलाल बनारसीदास) १९५८), पृ० ४३५

६. वही, पृ० ४३५-३६

७. वही, पृ० ४३६

सतत् विद्यमान है कि वह अपनी विशालता के कारण समुद्र-तुलना में क्षम रही हो।

एक अन्य मंत्र[८] में, पर्वत से उतर कर, उसे समुद्रपर्यंत गमन करती हुई कहा गया है। यहाँ वह नितांत पवित्र है और धनों की दात्री है। यह पर्वत शब्द अधिक मार्मिक है, जब कि वैदिक पद्धति में 'मेघ' रूप में अपना एक विशिष्ट अभिप्राय रखता है। सरस्वती को अंतरिक्ष-स्थानीय भी कहा गया है और इस रूप में वह **'माध्यमिका वाक्'** ठहरती है, जिसकी प्रकृति-परक व्याख्या मेघ-ध्वनि अथवा विद्युत्ध्वनि से की गई है, परन्तु आश्चर्यजनक समन्वय यहाँ भी दीख पड़ता है, जब उसकी कल्पना वाक् के साथ-साथ नदी के रूप में भी की गई है। वह बादलों के सारभूत जलप्रवाहों को लेकर मैदानों तक आती है तथा अगणित स्रोतों, नदियों तथा नदों को जल-दान करती है, अत एव इस विश्लेषण के आधार पर भी, उसे सिंधुमाता=**नदियों की माता** अथवा **जलों की माता** कहने में आपत्ति नहीं प्रतीत होती है।

यह विश्लेषण और कतिपय अन्य, जिनमें समान ही भाव प्रलुप्त है, हमारा ध्यान अनायास ही भारत की उस सामाजिक स्थिति की ओर आकृष्ट करते हैं, जिसमें माता की महती प्रतिष्ठा थी। समाज में मातृ-प्रधान परिवार की प्रथा प्रचलित थी और माँ ही परिवार की मुखिया हुआ करती थी। ऐसा जान पड़ता है कि वैदिक आर्य, जिन्होंने अपना भरण-पोषण नदी की छत्र-छाया में पाया था, उसे उसी प्रकार आदर-भाव देते थे, जैसे कोई माँ अपने बहुत से बच्चों पर समान दृष्टि रखती है। उनका नित्य साहचर्य माँ-पुत्रवत् था। उससे प्राप्त होनेवाली अनेक सुविधाओं के कारण, अपनी सामाजिक प्रवृत्ति (मातृप्रधान परिवार की प्रथा) का आरोप, अपनी पड़ौसिनी निरंतर प्रवाहिनी नदी पर किया। एक मंत्र[९] में इस बात का स्पष्ट सङ्केत मिलता है कि यह नदी पाँच जातियों का संवर्द्धन करती है। प्रसङ्ग **'पञ्च जाता वर्धयन्ती'** करके आया है, जिसकी व्याख्या सायण ने निम्न प्रकार की है :—

पञ्च जाता जातानि निषादपञ्चमांश्चतुरो वर्णान् गंधर्वादीन् वा वर्धयन्ती अभिवृद्धान् कुर्वती।

सरस्वती एक महती उदारवती माता के रूप में सतत् प्रवहमान थी। वह अपने समीप में बसने वाली जातियों का सम्यक् प्रकार पालन किया करती थी। अनेक जातियों में पाँच जातियों का स्थान बड़े महत्त्व का था। ये पाँच जातियाँ या तो पाँचों वर्णों के रूप में ली जा सकती हैं या इसमें भरत, कुरु, पूरु, पारावतस् तथा पाञ्चाल लोगों को सम्मिलित किया जा सकता है।

२. सप्तस्वसा

इस शब्द का प्रयोग सरस्वती के लिए **ऋग्वेद** में केवल एक बार[१०] हुआ है।

---

८. ऋ० ७.९५.२.

९. वही, ६६.१.१२

१०. वही, ६.६१.१०

सायण इसका अर्थ '**गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि स्वसारो यस्यास्तादृशी नदीरूपायास्तु गङ्गाद्याः सप्तनद्यः स्वसारः**' करते हैं । श्रीमाधव गङ्गादि सात बहनों में इसका तात्पर्य मानते हैं । ग्रीफिथ इसे 'सात बहनों वाली' तथा विल्सन सात बहनों का अर्थ सात छंद तथा सात नदी करते हैं ।

प्रश्न यह है कि उस समय तो देश में अगणित नदियाँ थीं, सात नदियों का अर्थ किन में गम्य है ? ऋग्वेद के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन नदियों में भारत की उत्तरी भाग की नदियों का वर्णन मुक्त कण्ठ से हुआ है । यह भाग भारत का सदैव से 'शीर्ष' रहा है । इसी भाग से संबंध रखने वाली नदियों में सरस्वती का स्तवन बहुत बढ़ कर हुआ है । डाउसन[११] ने इन सात नदियों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं :—

१. गंगा (गैंजेज)
२. यमुना (जमुना)
३ सरस्वती (सरसूति)
४. सुतुद्री (सतलज)
५. परुष्णी
६. मरुद्वृधा
७. आर्जिकीया (विपासा, हिफैसिस व्यास)

श्री अभयदेव[१२] इन नदियों की कल्पना पार्थिव रूप में करते हैं । इन्हीं नदियों के समान स्वर्ग लोक की भी गङ्गा आदि सात नदियाँ हैं, जिन्हें वे निम्नरूप से प्रस्तुत करना चाहते हैं :

१ आनंद की धारा
२. सत्ता की धारा
३. चैतन्य की धारा
४. विस्तार और सुषोम से युक्त ऋजुगामिनी सत्य की धारा
५. मनु की धारा
६. निम्नकृष्णवर्णधारा से युक्त वायु से बढ़ने वाली प्राण-धारा
७. अन्नमय पर्ववती स्थूल धारा

श्री अरविद सात नदियों का तात्पर्य जीवन के सप्तधा जलों के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके एतदर्थ विचार उन्हीं के जटिल दार्शनिक शब्दों में निम्नलिखित रूप में उद्धृत किए जा सकते हैं—

---

११. डाउसन, **हिंदू क्लासिकल डिक्शनरी**, (ब्राडवे हाउस लंदन, १९१४), पृ० २८१

१२. श्री अभयदेव, 'सरस्वती देवी एवं नदी', **वेदवाणी अमृतसर**, वर्ष १० अङ्क ७, पृ० १३

'इस प्रकार सप्तधा जल ऊपर उठते हैं और शुद्ध मानसिक क्रिया बन जाते हैं, वे स्वर्गीय शक्तिशाली होते हैं। वे वहाँ, केवल एक से उद्‌भूत भिन्न स्रोतों, परन्तु एक प्रथम चिरस्थायी सतत् नवीन शक्तियों के रूप में, अपने को प्रकट करते हैं— क्योंकि वे सब एक ही अति चैतन्य सत्य सप्त शब्द अथवा मौलिक क्रियात्मक अभिव्यक्तियों, दिव्य मस्तिष्क, सप्त वाणी के गर्भ से प्रवाहित हुए हैं......।[१३]

कुछ लोगों का सामान्य विचार यह भी है कि सात नदियों का अभिप्राय पंजाब की पाँच नदियों और सरस्वती तथा सिंधु में समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त **'सप्तस्वसा'** का अर्थ, जो लोग सात छंद मानते हैं, उसकी अपनी एक विशिष्ट महत्ता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि **ऋग्वेद** में सात प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं। वे सब **वाणी-स्वरूप** हैं अथवा अवयव के रूप में सरस्वती की सात बहनें हैं अथवा पूरे ज्ञान के भण्डार को इन्हीं द्वारा विभक्त किया गया है। यह उपादान और भी मूर्तिमान् हो उठता है, जब सप्तस्वसा को सूर्य की सतरङ्गी किरणों के साथ समीकरण करते पाते हैं, क्योंकि भारती के रूप में सरस्वती का सूर्य से घनिष्ठ संबंध है। यह सूर्य ज्ञान का प्रतीक है। यह अंधकार को दूर करता है तथा प्रकाशपुंज को फैलाता है। वाणी जिस प्रकार इला के रूप में पृथिवी-स्थानीय, सरस्वती के रूप में अंतरिक्षस्थानीय तथा भारती के रूप में द्युस्थानीय है और अलग-अलग सप्तधा रूप में तीनों लोकों में विद्यमान है, तद्वत् यह सूर्य-प्रकाश भी अपने सप्तधा-रूप से तीनों लोकों में सतत् विद्यमान है।

इसी प्रसङ्ग में यहाँ एक और बात ध्यान देने योग्य है। वैदिक आर्यों ने **'सप्त'** अथवा **'त्रिक्'** के प्रति अपनी अधिक आस्था व्यक्त की हैं, जिस प्रकार सात नक्षत्र, अथवा तीन देवियाँ सात ऋषि, सात लोक (ऋग्वेद में सरस्वती, इला और भारती; बाद के साहित्य में सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती तथा पुरुष रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश) प्रसिद्ध है। यदि हम **'सप्तस्वसा'** को नदी के रूप में स्वीकार करते हैं, तो निःसन्देह ही इससे भारत की उस भौगोलिक परिस्थिति का ज्ञान होता है, जब यहां बहुत सी नदियाँ रही होंगी, जिनमें सरस्वती का प्रमुख स्थान रहा होगा। लोग सदैव इन्हीं का नाम बड़े आदर तथा भक्ति से लेते रहे होंगे। शनैः शनैः लोगों में उनका महत्त्व और प्रतिष्ठा बढ़ती गई होगी और आपस की घनिष्ठता के कारण **'सप्तस्वसा'** स्वभावतः प्रकाश में आया होगा। यदि यही अभिप्राय लक्षित है, तो **'सप्तस्वसा'** का प्रयोग किसी भी इन नदियों के साथ किया जाना अनुचित नहीं है। यहाँ यह शब्द प्रकृत सरस्वती के साथ आया है, जो इसी अभिप्राय को द्योतित करता है।

---

१३. श्री अरविंद, **आन दि वेद** (श्री अरविंद अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र, पांडिचेरी, १९५६), पृ० १३८ और आगे।

३. घृताची

सरस्वती के विशेषण के रूप में यह शब्द केवल एक बार[१४] प्रयुक्त हुआ है। श्री माधव ऋगर्थदीपिका में इसका अर्थ **'उदकमञ्चन्ती'** करते हैं। यहीं पर इस दीपिका के संपादक श्री लक्ष्मण स्वरूप दो[१५] हस्तलिपियों का हवाला देते हैं, जिनमें शब्द का अर्थ **'उदकञ्चती'** किया गया है। सम्पादक यहीं पर भट्टभास्कर मिश्र[१६] की टीका का हवाला देते हैं, जहाँ शब्द का अर्थ **'घृतमाज्यभागं प्रत्यञ्चन्ती'** किया गया है। सायण इसका अर्थ **'घृतमुदकमञ्चती'**, विल्सन 'जल-वर्षण करने वाली' और ग्रीफिथ 'वामी' अर्थात् घी अथवा सारगर्भित जलों से भरी अथवा उनका वर्षण करने वाली करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस शब्द का **ऋग्वेद** में अन्यत्र प्रयोग भी हुआ है। एक स्थल पर यही शब्द[१७] स्वर्णिमा विद्युत् का विशेषण बन कर आया है, जो (विद्युत्) जल की वर्षा करती है। एक दूसरे स्थल पर[१८] सायण ने इस शब्द का अर्थ **'घृतेनाक्ता स्रुक्'** किया है। आगे के एक मंत्र[१९] में यह शब्द इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या करते हुए सायण लिखते हैं :

हे पुरुहूत बहुभिराहूतेन्द्र घृताची। घृतशब्दो हविर्भागमुपलक्षयति तथा च सोमाज्यपुरोडाशादिलक्षणं हविरञ्चति प्राप्नोतीति घृताची॥

एक अन्य स्थल[२०] पर यह शब्द द्वितीया एक वचन में प्रयुक्त हुआ हैं, जिससे **'धीः'** अथवा बुद्धि का भाव प्रकट होता है। सायण लिखते हैं :

'घृतमुदकमञ्चति भूमिं प्रापयति या धीर्वर्षणं तां घृताचीम्···'

उपर्युक्त अवलोकनों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :

घृताची वह है :

(क) जो जल-दान अथवा जल-वर्षण करती है,

(ख) जिसके लिए घृतेनाक्ता स्रुक् अर्पित की जाती है अथवा जिसे घृत, सोम, पुरोडाशादि युक्त बलि दी जाती है,

---

१४. ऋ० ५.४३.११

१५. पी० = ए पाम-लीफ मलयालम मैन्युस्क्रिप्ट, पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी। डी० = ए पाम-लीफ मलयालम मैन्युस्क्रिप्ट, लालचन्द पुस्तकालय, डी० ए० वी० कालेज, लाहौर।

१६. बी० बी० = भट्टभास्कर मिश्र की तैत्तिरीयसंहिता की टीका।

१७. वही।

१८. ऋ० १.१६७.२

१९. वही, ३.६.१

२०. वही, ३.३०.७

(ग) जो घी का वर्षण करती है,

इस शब्द के सूक्ष्म विवेचन से सरस्वती की क्रमिक विकासावस्था का भाव होता है। यदि वह जल-वर्षण करती है अथवा जल का दान देती है, तो वह निश्चय-रूप से नदी-स्वरूपा है तथा अपने जलों द्वारा समीपस्थ वैदिक आर्यों की जल-सम्बधी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यदि वह याज्ञिकों द्वारा दी गई बलि को यज्ञों में स्वीकार करती है, तो असंदिग्ध-रूप से उसका स्वरूप पार्थिव नदी-मात्र से उठता जा रहा है और उसका व्यक्तित्व शनैः शनैः देवतात्व को प्राप्त करता जा रहा है। चर्म-चक्षुओं के लिए इस प्रकार संवर्धन को प्राप्त होता हुआ रूप अधिक आनन्द का विषय बन जाता है। **'घृतम्'** का अर्थ क्षरण भी होता है। यह क्षरण वाग्देवी सरस्वती का शब्दार्थ-रूप-क्षरण है।[२१] इसी क्षरण-रूप उसके कार्य से ज्ञान का प्रसार होता है, क्योंकि वह स्वयं **'ज्ञानवती'** अथवा **'धीवंती'** है, अत एव **'घृताची'**[२२] जिसका अर्थ 'प्रकाशवती' अथवा 'ज्ञानवती' किया गया है, सर्वथा उपयुक्त है।

'घृताची' शब्द हमें सरस्वती के उस क्रियात्मक कार्य की ओर भी हठात् आकृष्ट करता है, जबकि वह अपनी बहनों के साथ **'मिल्श काउ'** अर्थात् दूध देने वाली गौ के रूप में गृहीत है तथा जिन सब के हाथ 'घृतार्द्र' हैं। यह बात भी यहाँ अविस्मरणीय है कि क्या सरस्वती सत्यतः लोगों के घरों में अथवा लोगों के हाथों में घूम-घूम कर घी, मक्खन और मधु का दान किया करती थी। इस बात का समाधान हमें दो रूपों में मिलता है। एक तो यह कि सरस्वती का जल बड़ा मीठा, स्वादु एवं स्वास्थ्य-वर्धक रहा होगा। लोग उसका पान कर बड़े-बड़े राज-रोगों को मिटाने में समर्थ रहे होंगे। अस्तु, कुछ इसी प्रकार के अभिप्रायों में सरस्वती के घी, मक्खन तथा मधु देने के कार्यों की इतिश्री समझनी चाहिए।

'घृताची' शब्द जहाँ एक ओर इस अर्थ को द्योतित करता है, वहीं इससे एक दूसरा अर्थ भी लक्षित होता है, जो महत् महत्त्वपूर्ण है। यह बात बिना किसी प्रमाण के सत्य सी जान पड़ती है कि सरस्वती के किनारे बसने वाले वैदिक आर्य, समीपवर्ती जलवायु के पशुओं के अनुकूल होने के कारण गौओं का पालन अधिक करते रहे हों और उन लोगों के पास गौ-सम्पत्ति एक श्रेष्ठ धन-राशि रही हो। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि यह कहा जाय कि गो-संवर्धन हमारे बाप-दादों का एक आकर्षक पेशा रहा है, जिसके **ऋग्वेद** में अनेक छिट-पुट प्रमाण मिलते हैं। इस विचार-धारा की पुष्टि और भी प्रबल हो जाती है, जबकि एक मंत्र[२३] में राजा नाहुष का वर्णन आता है, जिनके लिए सरस्वती ने **'घृत'** का

---

२१. वही, १.२.७

२२. वामन शिवराम आप्टे, **दि प्रैक्टिकल संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी** (पूना, १८१०), पृ० ४७८

२३. ऋ० ७.९५.२

दोहन किया। इसका तात्पर्य यही समझ में आता है कि राजा नहुष सरस्वती के बहुत बड़े भक्त रहे हों और उनकी भक्ति से प्रसन्न हो, उसने (सरस्वती) राजा को ऐसा आशीर्वाद दिया हो, जिससे उसकी गो-सम्पत्ति दिन-दूनी रात चौगुनी होने लगी हो। अंततोगत्वा वह इतनी बढ़ गई हो, जो सहस्र संवत्सर यावत् समाप्त न होने वाली हो गई हो। राजा बलि के विषय में उनके गो-सम्बन्धी कार्य अधिक ख्यात हैं। उनका यह आख्यान पौराणिक आधारशिला पर टिका हुआ है, पर जहाँ एक ओर राजा बलि गो-सम्राट् के रूप में हमारे सामने आते हैं, सम्भव है वहाँ राजा नहुष गो-राज रहे हों। उनके पास गौओं की महती राशि रही हो और वे संभवतः उनका दान भी किसी न किसी रूप से करते रहे हों। यह अन्वेषण का विषय है कि **ऋग्वेद** में यत्र-तत्त उनके दान-विषयक बीज मिलते हैं अथवा नहीं। इस प्रकार **'घृताची'** शब्द से भारत के प्राचीन वैदिक आर्यों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर भी सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

४. पावीरवी

यह विशेषण सरस्वती के लिए **ऋग्वेद** में केवल दो बार[२४] प्रयुक्त हुआ है। न केवल सरस्वती के साथ ही यह दो बार आया है, अपितु पूरे **ऋग्वेद** में यह प्रयोग केवल मात्र है। पहला मंत्र इस प्रकार है :

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥

ऋ० ६.४९.७

दूसरा मंत्र निम्न प्रकार है :

पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन् वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या ॥

ऋ० १०.६५.१३

शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है। कुछ लोग **'पावीरवी कन्या'** दोनों को मिलाकर अर्थ करते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग दोनों को अलग-अलग करके अर्थ करते हैं। सायण ने दोनों की सत्ता अलग-अलग मानी है। वह प्रथम मंत्र के **'पावीरवी'** का अर्थ **'शोधयित्री'** तथा **'कन्या'** का अर्थ **'कमनीया'** करते हैं। दूसरे मंत्र के 'पावीरवी' का अर्थ **'आयुधवती'** तथा **'तन्यतुः'** का अर्थ **'स्तनयित्री'** कर दोनों को **'वाग्माध्यमिका'** का विशेषण माना है—**'पावीरवी आयुधवती तन्यतुः स्तनयित्री वाग्माध्यमिका'**। इसी प्रकार विलसन पहले मंत्र के **'पावीरवी'** का अर्थ 'प्युरिफाइङ्ग' अर्थात् शुद्ध करने वाली तथा दूसरे 'पावीरवी' का अर्थ 'आर्म्ड' अर्थात् आयुधयुक्त करते है। गेल्डनर **'पावीरवी'** तथा **'कन्या'** दोनों को संयुक्त कर **'पवीरु की पुत्री'** (?) ऐसा अर्थ करते हैं। स्वयं गेल्डनर पवीरु के अर्थ से निश्चित नहीं हैं, अत एव

२४. **वही,** ६.४९.७; १०.६५.१३

उन्होंने इसी प्रसङ्ग में ग्रासमान तथा लुडविग को उद्धृत किया है, जो पवीरु का अर्थ 'विद्युत्' करते हैं। ग्रीफिथ पहले मंत्र के **'पावीरवी'** तथा **'कन्या'** दोनों को संयुक्त कर **'लाइटनिंग्स चाइल्ड'** अर्थात् विद्युतसुता ऐसा अर्थ करते हैं। दूसरे मंत्र के केवल **'पावीरवी'** का अर्थ **'लाइटनिंग्स डाटर'** विद्युत्सुता ही करते हैं, जब की पुत्र्यर्थ सूचक कोई शब्द वहाँ नहीं है। **'तन्यतु:'** से पुत्र्यर्थ सूचक अर्थ यहाँ भी नहीं निकलता, जिसका अर्थ स्वयं ग्रीफिथ के द्वारा **'गरजो'** इस 'आज्ञावाचक' अर्थ का सूचक है।

पुंलिंग शब्द 'पावीरव' में ङीप् प्रत्यय जुड़कर स्त्रीलिंग 'पावीरवी' शब्द बना हैं। डा० मोनियर विलियम्स[२५] के मत से **'पावीरव'** शब्द का अर्थ 'विद्युत् से निकलना या विद्युत् से सम्बन्ध रखना' है। उन्होंने स्त्रीलिंग में इसी शब्द के अर्थ को 'विद्युत् की पुत्री' स्वीकार करते हुए, वास्तव में उसे **विद्युत्ध्वनि**[२६] माना है। शब्द का मूल 'पवीरु' है, जिसका अर्थ उन्होंने 'विद्युदाभ'[२७] किया है। 'पावन' शब्द से 'पावीरवी' का सम्बन्ध जोड़ना कुछ अनुचित सा प्रतीत होता है। सायण **'पावीरवी'** का अर्थ 'शोधयित्री' कर 'पावन' से अनुप्राणित हुए होंगे, ऐसा जान पड़ता हैं, परन्तु 'पावन' 'पावीरवी' के निष्पत्ति-क्रम में एक सुसंयत एवं सुबद्ध कड़ी प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त दो और शब्द—**'पवीर'** तथा **'पवि:'** हैं, जिनसे 'पावीरवी' शब्द का सम्बन्ध जोड़ना अधिक संभव जान पड़ता है। **'पवीर'** का वैदिक अर्थ 'शलाका अथवा शूल'[२८] है। दूसरा शब्द 'पवि:' हमारी समस्या को अधिक सरलता से सुलझाता हुआ प्रतीत होता है, जिसका अर्थ निम्न प्रकार किया गया है :

'इन्द्र-कुलिश; कुलिश अथवा शर का अग्र-भाग; वाणी; अग्नि'[२९]

इस प्रकार शब्द के अध्ययन से ज्ञात होता है कि **'पावीरवी'** का संबन्ध इन्हीं शब्दों से है। इनमें से भी 'पवि:' के साथ इसका सम्बन्ध घनिष्ठ जान पड़ता है। 'पवि' इंद्र का अस्त्र माना गया है, जिससे वह उन शत्रुओं का संहार करते हैं, जो सृष्टि क्रम में बाधा डालते हैं। जब वह अस्त्र का प्रयोग करते हैं, उस समय गम्भीर ध्वनि होती है। बहुत से धर्म-दर्शनों में इस बात पर बल दिया गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से हुई है। वे शब्द देवताओं के इच्छा-स्वरूप थे। देवताओं ने अपना होंठ भड़फड़ाया, शब्द बाहर आए और सृष्टि-प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। तीन देवियों-

---

२५. मोनियर विलियम्स, **ए संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी**, (लन्दन, १८७२), पृ० ५७१

२६. **वही**, पृ० ५७१

२७. **वही**, पृ० ५५८

२८. वामन शिवराम आप्टे, **दि प्रैक्टिकल संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी** (पूना, १८९०), पृ० ६८८

२९. **वही**, पृ० ६८८

सरस्वती, इला एवं भारती के प्रसङ्ग में सरस्वती का स्थान **अंतरिक्ष** अथवा मध्य-क्षेत्र बताया गया है और इस प्रकार वह माध्यमिका वाक् है, जो मध्यम स्थान से सर्वप्रथम प्राकृतिक अनुभवों के रूप में उत्पन्न हुई कल्पित की गई है। स्पष्ट शब्दों में इसे यों भी कहा जा सकता है कि सृष्टि के आदि काल में आकाश में बादल रहे होंगे। उनके परस्पर संघर्ष के कारण बिजली उत्पन्न हुई होगी और अंततोगत्वा उससे शब्द उत्पन्न हुआ होगा। इसी शब्द के सर्वप्रथम अंतरिक्षजात होने के कारण उसे प्रकृतिपरक व्याख्यानुसार माध्यमिका वाक् माना गया होगा और बाद में इसी से अधिक विश्लेषिता होकर परा, पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी का रूप धारण कर लिया होगा। सायण सत्य ही कहते हैं कि **सरस्वती = सर इत्युदकनाम। तद्वती स्तनितादिरूपा माध्यमिका च वाक्**'।[30] इसी मंत्र में उन्होंने भारती को '**भारती भरतस्यादित्यस्य संबंधिनी द्युस्थाना वाक्**' तथा इडा '**इडा पार्थिवी प्रैषादिरूपा**' कह सत्यतः उनको '**पश्यंती**' तथा '**वैखरी**' रूप वाणियों के भेद ही माने हैं। यह भारती द्युस्थाना वाक् हो सूर्य से भली-भाँति संबद्ध रह '**रश्मिरूपा**'[31] कही गई है, जो प्राकृतिक अनुभाव का ही एक रूप है। यही रश्मिरूपा भारती तथा स्तनितादि-रूपा सरस्वती, पृथ्वी पर भली-भाँति समझी एवं समझाई जाने वाली होने के कारण वैखरी-रूप हैं, परन्तु बिंदु कुलिश अथवा वज्र है, अत एव माध्यमिका वाणी का जनक यही है। इस प्रकार '**पावीरवी**' को **विद्युत्सुता** मानकर '**माध्यमिका वाक्**' का ही एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक एवं प्राकृतिक विवेचन करना है और कुछ नहीं। जहाँ पर '**पावीरवी**' शब्द आया है, वहाँ सरस्वती को वाग्देवी मानकर, उस मंत्र की बुद्धिपरक व्याख्या करना सर्वथा उपयुक्त एवं उचित प्रतीत होता है। शब्द को और जटिल बनाना, एक प्रकार से अपने को अंधेरे में रखना है।

प्रारम्भ में गिनाए गए ऋतावरि ! ऋ० २. ४१. १४; सप्तस्वसा ऋ० ६. ६१. १०; सप्तधातुः ऋ० ६. ६१. १२; सप्तथी ऋ० ७. ३६. ६; त्रिषधस्था ऋ० ६. ६१. १२ विशेषणों से सरस्वती के सामाजिक भगिनित्व पर; मरुत्सखा ऋ० ७. ९६. २; सख्या ऋ० ६. ६१. १४; उत्तरा सखिभ्यः ऋ० ७. ९५. ४ से सरस्वती के सामाजिक सखित्व पर, सुभागा ऋ० १. ८९. ३; ७. ९५. ४; ८. २१. १७; मरुत्वती ऋ० २. ३०. ८; वृष्णः पत्नी ऋ० ५. ४२. १२; वीरपत्नी ऋ० ६. ४९. ७; प्रियतमे ऋ० ७. ९५. ५; सुभगे ! ऋ० ७. ९५. ६; भद्रा ऋ० ७. ९६. ३; से, उसके सामाजिक पत्नित्व पर; पावीरवी ऋ० ६. ४९. ७; १०. ६५. १३; कन्या ऋ० ६. ४९. ७; से उसके सामाजिक पुत्रित्व पर; मयोभूः ऋ० १. १३. ९, ५. ५. ८; अन्वितमे ! ऋ० २. ४१. १६; सिंधुमाता ऋ० ७. ३६. ६ से, उसके सामाजिक मातृत्व पर तथा शेष से उसके अन्य अवशेष पक्षों पर प्रकाश पड़ता है।

---

३०. सायण-व्याख्या, ऋ० १. १४२. ९

३१. वही, २. १. ११

ऋग्वैदिक सरस्वती-नदी

आज गङ्गा हमारे देश की एक महती पवित्र नदी मानी जाती है । पुराणों में इसका यशोगान मुक्त कण्ठ से किया गया है । यह नदी किसी समय भगीरथ के प्रयत्नों द्वारा स्वर्ग से भूतल पर लाई गई थी, अत एव स्वर्गीया होने के कारण जन-मानस में इसे बड़ी श्रद्धा मिली है । लोग इसे गङ्गा माँ कह कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं तथा इसका जल-पान कर अपने को कृत्य-कृत्य मानते हैं, परन्तु एक समय ऐसा भी था, जबकि गङ्गा को इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली थी । उस काल का नाम 'वैदिक युग' था । उस युग की सब से बढ़ी-चढ़ी नदी सरस्वती थी । एतत्सम्बन्धी प्रमाण वैदिक मंत्रों में भरे पड़े हैं ।[1] **ऋग्वेद** के 'नदी-स्तुति' विषयक मंत्रों में जहाँ गङ्गा का वर्णन दो या तीन बार हुआ है, वहाँ सरस्वती की स्तुति अनेकशः हुई है । इसके लिए संपूर्ण दो सूक्त आते हैं ।[2] इसके अतिरिक्त छिट-पुट अनेक मंत्रों में इसका यशोगान किया गया है । ऋग्वैदिक एक मंत्र के अनुसार सरस्वती माताओं, नदियों एवं देवियों में सर्वश्रेष्ठ है :

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति[3]

यह नदी पर्वतों से निकल कर समुद्र पर्यन्त जाती थी ।[4] विशालकाय, तीव्र, गतिशील एवं अगाध होने के कारण जनमानस में अनायास भय उत्पन्न करती थी ।[5] वैदिक काल में गङ्गा एवं यमुना छोटी-छोटी नदियाँ थीं । वे अपने लघु पथ को पार कर एक छोटे से सागर में गिरा करती थीं, जिसका नाम गङ्गेटिक **समुद्र** था ।[6] यह समुद्र आज के गङ्गा-यमुना के मैदानों में अवस्थित था । आज की भाँति गङ्गा तथा यमुना का मार्ग हिमालय से लेकर बङ्गाल की खाड़ी तक नहीं था । सरस्वती भी हिमालय से निकलती थी ।[7] हम आज जहाँ राजपूताना देखते हैं, वैदिक काल में वहाँ एक अथाह

---

१. **ऋग्वेद**, १.३.१२; २.४१.१६; ३.२३.४-५; ४२.१२; ४३.११; ६.५२.६; ७.३६.६; ६.६; ८.२१. १७-१८; ५४.४; १०.१७.७; ६४. ६; ७५.५ इत्यादि ।

२. **वही**, ७.६५.१-६;६६.१-६

३. **वही**, २.४१.१६

४. **वही**, ७.६५.२

५. **वही**, ६.६२.१४

६. ए. सी. दास, **ऋग्वैदिक इण्डिया** (कलकत्ता, १६१७), पृ० ८

७. यशपाल टण्डन, **ए कांकारडेंस ऑफ पुराण कान्टेण्ट्स** (होशिआरपुर, १६५२), पृ० ५२

समुद्र हिलोरें लेता था। सरस्वती इसी समुद्र में गिरा करती थी।[८] इस प्रकार उत्तरी भारत में दो समुद्र पूर्व एवं पश्चिम में अवस्थित थे[९] तथा दक्षिण दिशा से परस्पर जुड़े थे। इनके पारस्परिक संयोजन से उत्तरी भारत दक्षिण से पूर्णरूप से विभक्त था।

लोगों की अतीत काल से यह धारणा बनी हुई है कि गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती—ये तीनों नदियाँ प्रयाग में सङ्गम पर मिलती हैं। प्रत्यक्षरूप से यहाँ गङ्गा एवं यमुना दो ही नदियाँ दिखाई देती हैं, अत एव स्वाभाविक रूप से केवल उन्ही दोनों का वहाँ सङ्गम मानना चाहिए। इस समस्या का समाधान एक जटिल प्रश्न है। कुछ शास्त्रों के अनुसार यह भी बताया जाता है कि एक समय सरस्वती प्रत्यक्ष रूप से गङ्गा तथा यमुना से प्रयाग में मिलती थी, परन्तु कलियुग को देखकर अथवा निषादों के स्पर्श-भय से लुप्त हो गई। अब यह केवल अंतः सलिला है तथा पृथिवी के भीतर ही भीतर बहती हुई प्रयाग में गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम पर मिलती है, परन्तु भूगर्भशास्त्र तथा अन्य भूगोल शास्त्र विषयक खोजों के आधार पर यह धारणा मिथ्या एवं हास्यास्पद मानी जाती है।

कुछ आधुनिक विद्वान् प्रयाग में इन तीनों नदियों का सङ्गम एक विचित्र प्रणाली से सिद्ध करते हैं। प्रसिद्ध भूतत्त्ववेत्ता डॉ० डी० एन० वाडिया का कथन है कि प्राचीन काल में सरस्वती गङ्गा के पश्चिम में बहा करती थी। काल-क्रम से जब पृथिवी की उथल-पुथल प्रारम्भ हुई, तब सरस्वती की दिशा पश्चिम से पूर्व की ओर होने लगी तथा अंततोगत्वा वह प्रयाग में गङ्गा से जा मिली। तब उसका नाम 'यमुना' पड़ गया।[१०] इस मत के आधार पर भी समस्या का समाधान नहीं दीखता। वाडिया साहब ने घूम-घाम कर प्रयाग में दो ही नदियों का सङ्गम दिखाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने असली यमुना पर सरस्वती की अक्षिप्ति दिखाई है तथा समस्या को और भी उलझा दिया है।

श्री दिवप्रसाद दास गुप्ता का मत भी विचारणीय है। इन्होंने पाश्चात्य विद्वान् पास्कोई द्वारा प्रतिपादित **इण्डो-ब्रह्म रीवर**[११] सिद्धान्त के आधार पर वैदिक सरस्वती नदी का एक विस्तृत मार्ग निर्धारित करने की चेष्टा की है। आप का कथन है कि सरस्वती प्राचीन काल में आसाम की पहाड़ियों से निकल कर पंजाब के पश्चिम में स्थित

---

८. ए. सी. दास, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ७

९, तु० ऋ० १०.१३६.५; **मत्स्यपुराण**, १२१.६५

१०. डी० एन० वाडिया, **जिआलोजी ऑफ इण्डिया** (न्यूयार्क, १९६६), पृ० ३९२

११. दिवप्रसाद दास गुप्ता, 'आइडेण्टिफिकेशन ऑफ एंशिएण्ट सरस्वती रीवर', **प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रांजैक्शंस ऑफ आल इण्डिया ओरिएण्टल कांफ्रेंस**, १८वाँ सेशन (अन्नामलाई नगर, १९८५), पृ० ५३५

अरब की खाड़ी में गिरती थी। इसके उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में छोटा नागपुर का प्लेटू था। इस प्लेटू के दक्षिण में मेघना, ब्रह्मपुत्र, भागीरथी आदि नदियाँ थीं, परिस्थितिवश जब इन नदियों में **'रीवर कैप्चर'** होना प्रारम्भ हुआ, तब मेघना, ब्रह्मपुत्र, भागीरथी आदि नदियों ने पीछे को हटकर सरस्वती को पकड़ लिया। ऐसी परिस्थिति में वैदिक सरस्वती का जल आधुनिक ब्रह्मपुत्र के मार्ग से बहने लगा। भागीरथी में भी **'रीवर कैप्चर'** हुआ। फलस्वरूप इसने गङ्गा को पकड़ लिया तथा गङ्गा ने यमुना, गण्डक आदि नदियों को पकड़कर उनका जल अपने में मिला लिया।[१२] **'इण्डो ब्रह्म रीवर'** का निचला भाग शतद्रु, यमुना तथा घग्घर के साथ प्रवाहित होता रहा। अन्त में यमुना ने भी **'रीवर कैप्चर'** से वैदिक सरस्वती के निचले भाग को अपने में समाश्रित कर लिया।[१३] श्री गुप्ता ने इस प्रकार से गङ्गा, यमुना एवं सरस्वती का प्रयाग में सम्मिलन प्रदर्शित किया है।

इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कठिनाई वैदिक सरस्वती को आसाम की पहाड़ियों से जोड़ना है। आज सभी विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि वैदिक सरस्वती का उद्गम-स्थल शिवालिक की पहाड़ियाँ हैं[१४], अत एव उसका मार्ग आसाम की पहाड़ियों से दिखाना युक्तियुक्त नहीं है। फलस्वरूप श्री गुप्ता का मत सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता।

डॉ० एन० एन० गोडबोले का मत है कि प्रयाग में गङ्गा एवं यमुना से मिलने वाली संभवतः कोई छोटी सी सरस्वती नामक नदी रही है। इसकी दिशा दक्षिण से सङ्गम की ओर थी। संभव है कि लोगों ने भ्रमवश इसे ही वैदिक सरस्वती मान लिया हो।[१५]

महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य **'रघुवंश'** में प्रयाग पर गङ्गा तथा यमुना की छाया प्रदर्शित की है।[१६] उनकी एक अन्य कृति **मेघदूत** में वैदिक सरस्वती की एक निश्चित एवं स्पष्ट झलक पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर दिखाई देती है। कालिदास का यक्ष मेघ से संदेश भेजते समय कहता है कि हे मेघ ! जब तुम मेरा संदेश लेकर मेरी प्रियतमा के पास कनखल होते हुए अलकापुरी जाओगे, तो रास्ते में तुम्हें सरस्वती नदी मिलेगी। उसका जल पान करने से तुम केवल वर्णमात्र से काले, पर भीतर से नितांत शुद्ध हो जाओगे।[१७]

---

१२. **वही**, पृ० ५३६

१३. **वही**, पृ० ५३७

१४. तु० डी० एन० वाडिया, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १०; एन० एन० गोडबोले, **ऋग्वैदिक सरस्वती** (राजस्थान, १९६३), पृ० १७

१५. एन० एन० गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० २०

१६. **रघुवंश**, १३.४४-४८

१७. **मेघदूत**, १.५२-५४

वस्तुस्थिति यह है कि आज अनेक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्राचीन काल में सरस्वती शिवालिक की पहाड़ियों से निकलती थी तथा राजपुताने के सागर में गिरा करती थी। इस सागर के दक्षिण में विंध्याचल की लगभग चार मील ऊँची पहाड़ियाँ सुदूर पूर्व तथा पश्चिम तक फैली हुई थीं।[१८] भू-परिवर्तन के कारण इस पर्वत की चोटियाँ धराशायी हो गईं। इसके अवशेष बिखर गए। इसका अधिकांश भाग राजपुताना तथा गङ्गेटिक सागरों में जा गिरा। फलतः इन समुद्रों का पेट भर गया तथा इनमें गिरने वाली नदियों की दिशाएँ भी बदल गईं। सरस्वती जो पहले राजपुताने के सागर में गिरती थी, अब उसकी दिशा पश्चिम से पश्चिमतर हो गई[१९] तथा वह अरब सागर में गिरने लगी।[२०] इस परिवर्तन का स्पष्ट सङ्केत पुराणों में मिलता है। वहाँ सरस्वती को '**प्राची**' एवं '**पश्चिमाभिमुखी**' दो पौराणिक उपाधियों से विभूषित किया गया है। '**प्राची**' का अभिप्राय पूर्व है, अर्थात् सरस्वती जब पूर्व—गङ्गा[२१] और यमुना से पश्चिम में थी, तब '**प्राची**' कहलाती थी, परन्तु परिवर्तन के कारण जब 'प्राची' से भी पश्चिम को अभिमुख हुई, तब '**पश्चिमाभिमुखी**' कहलाने लगी।[२२]

आज सरस्वती के भौतिक स्वरूप के निश्चय की समस्या उठ खड़ी हुई है। वह अपनी भौतिक इयत्ता खो चुकी है, परन्तु उसके अवशेष अब भी बाकी हैं, जिनके आधार पर उसका मार्ग निश्चित किया जा सकता है। उसकी लुप्तावस्था को व्यक्त करने के लिये साहित्य में बहुधा '**विनशन**' शब्द का प्रयोग मिलता है। **विनशन** वह स्थान है, जहाँ सरस्वती विलुप्त हो गई। यह स्थान पटियाला स्टेट में पड़ता है।[२३] **ताण्ड्यमहा-**

---

१८. एन० एन० गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ८
'ए ब्रीफ डैस्क्रिप्शन ऑफ् द अरावलिज़······ऐट वन टाइम, दे हैड अश्योर्ड ग्रेट हाइट अबाउट फोर माइल्स एण्ड वेयर इवुन टालर दैन द् हिमालयाज़ आवर यङ्गेस्ट आव् माउण्टेन्स टु डे।"

१९. **वही**, पृ० २
'इट वाज़ आलसो सजेस्टेड् दैट द डिकंपोजीशन प्रोडक्ट्स ऑफ द अरावली रेञ्जेज वंस फोर माइल्स हाई मस्ट हैव स्प्रेड इन आल डिरेक्शंस··· ह्विच इज रिस्पांसिबुल फार ड्राइविंग द यमुना एण्ड गङ्गा स्ट्रीम्स ईस्टवर्ड्स एण्ड द अदर स्ट्रीम्स ऑफ् द पंजाब, इंडस ऐंड सरस्वती टूवर्ड्स द वेस्ट···।'

२०. **वही**, पृ० २,३२-३३

२१. तु० **पद्मपुराण**, ५.१८.२१७, २८.१२३; **भागवतपुराण**, १०.७८. १९

२२. तु० **स्कंदपुराण**, ७.३५.२६

२३. **मैक्सम्युलर**, **सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट**, भाग १४ (दिल्ली, १९६५), टिप्पणी ८, पृ० २

ब्राह्मण में एक स्थान पर प्लक्षप्रास्रवण तथा विनशन का वर्णन मिलता है । इन दोनों स्थानों के बीच की दूरी ४४ '**आश्वीन**' बताई गई है ।[२४] एक '**आश्वीन**' एक अश्वारोही की एक दिन की यात्रा है । **आश्वीन** की दूरी सर्वसम्मति से एक सी नहीं । कोई इसे ४ योजन, कोई ५, कोई ६,८,६,१२ योजन का मानते हैं ।[२५] प्लक्षप्रास्रवण हिमालयस्थ वह स्थान है, जहाँ से सरस्वती उद्भूत होती है । [२६] ऐसी विकट परिस्थिति में **प्लक्ष-प्रास्रवण** से '**विनशन**' तक की एक निश्चित दूरी निर्धारित करना कठिन ही नहीं, असंभव कार्य है ।

वस्तुतः आज '**आधुनिक सरसूति**' (**मार्डन सरसूति**) को वैदिक सरस्वती होने की पूरी-पूरी मान्यता मिल चुकी है । अनेक भारतीय विद्वानों की **भाँति** पाश्चात्य विद्वान् सर ओरेल स्टाइन ने अपने निजी पर्यवेक्षण के आधार पर इसी 'सरसूति' को ऋग्वैदिक सरस्वती सिद्ध करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है ।[२७] यह थानेसर के पश्चिम **१४** मील की दूरी पर स्थित आधुनिक पेहुआ अथवा पृथूदक के निकट बहती है ।[२८] यह शिवालिक की पहाड़ियों से निकल कर **आदि बद्री** से होती हुई जब हनुमानगढ़ के पास आती है' तब घग्घर से मिल जाती है । यह घग्घर भी उसी शिवालिक की पहाड़ियों से निकलने वाली एक नदी का अवशेष है । दोनों का मिला-जुला स्रोत सरसूति-घग्घर अथवा केवल घग्घर कहलाता है । केवल घग्घर कहे जाने पर भी 'सरसूति' की अभिव्यक्ति स्वयमेव होती रहती हैं । पटियाला, हिसार, बीकानेर, बहावलपुर से होती हुई जब यह पाकिस्तानी राज्य में प्रविष्ट होती है, तब 'हाकरा' नाम से अभिहित होती है । यह हाकरा सरस्वती (सरसूति) का पुच्छ है । यह वर्ष में नवम्बर से जून तक प्रायः सूखी रहती है । इसे वास्तव में '**पूर्वी नारा**'(**इस्टर्न नारा**) कहा जाता

---

२४. **ताड्यब्राह्मण**, २५.१०.१६

२५. तु० **अथर्ववेद**, ६.१३१.३; **महाभाष्य**, ५.३.५५; **अर्थशास्त्र**, २.३०

२६. मैक्डानेल एण्ड कीथ, **वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स** एण्ड **सब्जेक्ट्स**, भाग-२ (दिल्ली, १६५८), पृ० ५५; डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी, **स्टडीज इन स्कंदपुराण**, भाग १ (लखनऊ, १६६६), पृ० १५३; **स्कंदपुराण**, ७.३३.४०-४१

२७. सर ओरेल स्टाइन, **जिआगरफिकल जनरल**, भाग-६६ (जनवरी-जून, १६४२), पृ० १३७ तथा आगे

२८. एलेक्जेण्डर कनिङ्घम, **द एंशिएण्ट जिओगरफी ऑफ इण्डिया** (वाराणसी, १६६३), पृ० २८३

'द ओल्ड टाउन ऑफ पेहोआ इज़ सिचुएटेड् ऑन द साउथ बैङ्क ऑफ सरसूती, १४ माइल्स टु द वेस्ट ऑफ थानेसर ।'

है,[२९] जिससे होकर कभी सरस्वती कच्छ की खाड़ी में गिरा करती थी ।[३०]

सरसूति का पेट पृथिवी की उथल-पुथल के कारण पर्याप्त उठ आया है । ग्रीष्म काल में यह सूखी रहती है । वर्षा काल में अत्यन्त तीव्र गति से बहती है और इस का जल दोनों ओर दूर-दूर तक फैल जाता है ।[३१] लोक-गीतों (फ़ाकलोर्स) तथा जन-विश्वासों (**जनरल बिलीफ्स आव् द पीपुल**) में इसे वैदिक सरस्वती होने की पूरी-पूरी मान्यता मिल चुकी है ।[३२]

पुराणों में सारस्वत लोगों का वर्णन मिलता है । वे लोग भारत के पश्चिमी भाग में सरस्वती के किनारे रहा करते थे, अत एव 'सारस्वत' कहलाते थे । अब भी वे अधिकतर भारत के पश्चिमी भाग में ही मिलते हैं तथा जाति से ब्राह्मण होते हैं । उन्होंने अपने विशेष ज्ञापन के लिए कभी सरस्वती के किनारे एक देश बसा रक्खा था, जो '**सारस्वत देश**' कहलाता था । वे सरस्वती को अपनी 'माता' के समान मानते थे । फलतः उसकी कृपा से इनमें से बहुत से ऋषि-पद को प्राप्त हुए ।[३३]

महाभारत में सारस्वत के विषय में एक विचित्र कथा आती है । यहाँ सारस्वत को मानवीकृत सरस्वती का पुत्र एवं ऋषि बताया गया है । एक समय १२ वर्ष का घोर दुर्भिक्ष पड़ा । जीविका के साधनों के अभाव के कारण ब्राह्मणों में वेदाध्ययन की रुचि जाती रही । फलतः संपूर्ण वैदिक ज्ञान समाप्त हो गया । सरस्वती की कृपा से केवल सारस्वत ने ही इस आदि ज्ञान को सुरक्षित रखा । दुर्भिक्ष के अन्त होने पर इसी सारस्वत ने उस ज्ञान को पुनः प्रसारित किया ।[३४] यह 'सारस्वत' सारस्वत लोगों के पूर्वज जान पड़ते हैं । दुर्भिक्ष से हमें सरस्वती के सूख जाने की सूचना मिलती है, जिसका सम्बन्ध '**विनशन**' से जोड़ना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में सरस्वती को '**पंच जाता वर्धयन्ती**' कहा गया है ।[३५] तात्पर्य यह है कि वह पाँच जातियों का संवर्धन करती है । इन पाँच जातियों

---

२९. तु० रे चौधुरी, एच.सी., 'दि सरस्वती', **साइंस एण्ड कल्चर**, ८ (१२), न० १-१२, पृ० ४६८; एन. एन. गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १९

३०. वही पृ० २

३१. रे चौधुरी, एच. सी., पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ४६८

३२. सर ओरेल स्टाइन, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १३७ आगे

३३. तु० **शल्यपर्वन**, ५२.२-५१; **शांतिपर्वन**, १५९.३८ आगे

३४. तु० **ब्रह्माण्डपुराण**, २.१६.६२; **मत्स्यपुराण**, ११४.५०; एच० एच० विल्सन, **द विष्णुपुराण** (कलकत्ता, १९६१), भूमिका भाग, पृ० ५४-५५

३५. ऋ० ६.६१-१२

में कुरु, पुरु तथा भरत मुख्य हैं। इनमें से कुरु का घनिष्ट सम्बन्ध 'कुरुक्षेत्र' से था।[३६] पुरु लोग कुरु लोगों से पारस्परिक विवाहादि सम्बन्ध से अति निकट थे।[३७] भरत लोग भारती के उपासक थे, जो सरस्वती नदी से सम्बद्ध एक देवी थी। भारती के भक्त होने के कारण वे भरत कहलाते थे।[३८] इन सब लोगों का सम्बन्ध पश्चिमी भारत, विशेष कर पूर्वी पंजाब तथा दक्षिणी राजस्थान से था, अत एव इन सब पुष्ट प्रमाणों के आधार पर वैदिक सरस्वती को पश्चिमी भारत विशेष-रूप से पूर्वी पंजाब तथा दक्षिणी राजस्थान से प्रवाहित होने वाली नदी माना जाना सर्वथा युक्तियुक्त है।

---

३६. तु० मैकडानेल एण्ड कीथ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, भाग १, पृ० १६५-१६७; **इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली**, भाग २९, नं० ४, पृ० २९३ आगे

३७. तु० मैक्डानेल एण्ड कीथ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, भाग २, पृ० १२

३८. डोनाल्ड ए० मेकेंजी, **इण्डियन मिथ् एण्ड लेजेण्ड** (लण्डन, १९१३), भूमिका भाग, पृ० ४०

—५—

सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति

सरस्वती की उत्पत्ति-विषयक सामग्री भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न रूपों में पाई जाती है। यह सामग्री कहीं बड़ी अस्त-व्यस्त दशा में है और कहीं बड़े ही सुसंयत रूप में पाई जाती है। सामान्य रूप से पुराणों का प्रमुख वर्ण्य विषय पञ्चलक्षण है, जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित की समाविष्टि पाई जाती है। इन पञ्चलक्षणों में प्राकृत सर्ग––(ब्रह्मसर्ग, भूतसर्ग, वैकारिक सर्ग), वैकृत सर्ग (मुख्य सर्ग, तिर्यक्-सर्ग, देवसर्ग, मानुष सर्ग, अनुग्रह-सर्ग), प्राकृत-वैकृत (कौमार सर्ग) तथा प्रतिसर्ग[1] (नैमित्तक प्रलय, प्राकृत, आत्यन्तिक प्रलय, नित्यप्रलय) का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इन पञ्चलक्षणों में सर्ग एवं प्रतिसर्ग के प्रकाश में सरस्वती देवी की उत्पत्ति का विवेचन करना अधिक उपयुक्त होगा। सरस्वती की उत्पत्ति का वर्णन प्रमुख रूप से **ब्रह्मवैवर्त्त, मत्स्य, पद्म, वायु** तथा **ब्रह्माण्ड पुराणों में** मिलता है।

१. ब्रह्मवैवर्त्तपुराणः

इस पुराण में सरस्वती की उत्पत्ति-विषयक सामग्री यत्र-तत्र कई स्थलों पर पाई जाती है। इस पुराण के अध्याय ३ (ब्रह्मखण्ड) में पौराणिक देवियों के त्रिक् (सरस्वती, महालक्ष्मी तथा दुर्गा) की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए सरस्वती की उत्पत्ति परमात्मा के मुख से बताई गई है।[2]

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के एक अन्य स्थल पर सरस्वती की उत्पत्ति भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से बताई गई है और वह उनकी शक्तिस्वरूपा हैं।[3] एक और स्थल पर इसी पुराण में सरस्वती की उत्पत्ति का विशद वर्णन पाया जाता है। यहाँ सांख्य-सिद्धान्त के प्रकाश में उत्पत्ति-प्रक्रिया का सुन्दर विवेचन हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार, सर्वप्रथम आत्मा तथा उसकी शक्ति मूलप्रकृति का विवेचन किया गया है। आदि काल में आत्मा निष्क्रिय एवं तटस्थ था, परन्तु कालान्तर में उसे सर्जनेच्छा उत्पन्न हुई, फलतः उसने स्त्री एवं पुरुष का रूप धारण किया। उसका यह स्त्री-रूप प्रकृति कहा जाता है। यह प्रकृति-रूप भी श्रीकृष्ण के इच्छानुसार दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती

---

१. द्र० **ब्रह्मवै० पु०** २३१.१-२३३.७५; **विष्णुपु०** ६.३.१-७०, १०.४; **वायुपु०** १००.१३२,१०२.१३५; **मार्क० पु०** ४६.१-४४; **कूर्मपु०** २.४५। ४.४६-६५; **गरुडपु०** १.२१५.४-२१७.१७; **ब्रह्माण्डपु०** ३.१.१.१२८-३.११३

२. **ब्रह्मवै०** १.३.५४-५७

३. उपरिवत्, २.४.१२

तथा सावित्री के रूप में पञ्चधा हो गया। ये प्रकृति के पाँच रूप हैं, जिनमें सरस्वती भी एक प्रकृति-रूप है। इन्ही पाँच प्रकृतियों के आधार पर संसार की उत्पत्ति मानी गई है।[1]

इस प्रकार पौराणिक सृष्टि-विद्या में सांख्य-दर्शन का प्रभाव सुस्पष्ट है। सांख्य में सृष्टि-रचना का आधार प्रधान तथा पुरुष दोनों का योग है। उपर्युक्त विवेचन में भी आत्मा, श्रीकृष्ण तथा दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री (प्रकृति) सृष्टि के दो अनादि तत्त्व हैं, जिनके संयोग से संसार की सृष्टि होती है। प्रकृति निष्क्रिय तथा चेतना-रहित है। पुरुष के सम्पर्क से वह सक्रिय तथा चेतनायुक्त हो उठती है तथा कार्य की जननी (कारण) बन जाती है। पुराणों में सरस्वती को ब्रह्मा[2] तथा विष्णु[3] की पत्नी माना गया है। सामान्यतः कहा जाता है कि देवियाँ देवों की शक्ति की प्रतीक हैं, अर्थात् पति-पत्नी के संयोग का तात्पर्य सृष्टि-रचना है। यहाँ ब्रह्मा तथा विष्णु का तादात्म्य दिखाना अनुचित नहीं है। ब्रह्मा को अद्वैत वेदान्त में 'ब्रह्म' संज्ञा दी गई है और इसी ब्रह्म को वैष्णव विष्णु से, शैव शिव से तथा शाक्त शक्ति से तादात्म्य करते हैं। पुराणों में सांख्य तथा वेदान्त का समन्वय मिलता है, अर्थात् जिस प्रकार प्रकृति तथा पुरष दो भिन्न तत्त्व नहीं, प्रत्युत् वे दोनों ब्रह्म द्वारा प्रेरित होने पर कार्य-सम्पादन में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, कृष्ण तथा सरस्वती भिन्न तत्त्व नहीं। अकार्य-काल में उनकी भिन्न स्थिति दिखाई देती है, परन्तु कार्य-काल में सरस्वती को उनकी शक्ति (कारण) कार्य-सम्पादनार्थ व्यक्त साधन समझना चाहिए।

२. मत्स्य तथा पद्मपुराण :

मत्स्यपुराण के अनुसार सरस्वती की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है, जिसने अपने मुख से समस्त **वेदों** तथा **शास्त्रों** को उत्पन्न किया। तदनन्तर ब्रह्मा[4] ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद नामक दस मानस पुत्रों की उत्पत्ति की।[5] अपनी इस मानस सृष्टि से ब्रह्मा को सन्तोष-लाभ नहीं हुआ, अत एव वह अपने सृष्टि-भार को संभालने की चिन्ता से गायत्री का जप करने लगे। फलतः उनके अर्ध शरीर से गायत्री की उत्पत्ति स्त्री-रूप में हुई। इस स्त्री-रूप

१. **उपरिवत्**, २.१.१ से आगे।
२. **मत्स्यपु०** ३.३०-४३
३. **ब्रह्मवै० पु०** २.२.५६; जॉन डाउसन, **क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथोलोजी** (लन्दन, १९७१), पृ० २८४-२८५
४. **मत्स्यपुराण**, ३.२-४
५. उपरिवत्, ३.५-८

का विभिन्न नामकरण **शतरूपा**, **सावित्री**, **गायत्री**, **सरस्वती** तथा **ब्रह्माणी** के रूप में हुआ।[1]

एक दूसरे विवरण के अनुसार, ब्रह्मा ने अपने अर्ध शरीर से अपनी पत्नी के रूप में एक सुन्दर स्त्री की उत्पत्ति की।[2] वह स्वयं इनके समान ही सम्पूर्ण संसार की सृष्टि में निपुण थी।[3] **मत्स्यपुराण** का एक अन्य विवरण भी मिलता है। उसके अनुसार ब्रह्मा ने सरस्वती की उत्पत्ति लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या तथा विश्वेशा के साथ की।[4] **पद्मपुराण** में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[5]

३. वायुपुराण:

इस **पुराण** के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपने मानस पुत्रों की रचना की। वे अपने पिता ब्रह्मा के सदृश थे। वे सब ज्ञानवान् तथा संसार के प्रलोभनों से तटस्थ थे (**आगतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः**), अत एव सांसारिक प्रपञ्चों से उन्हें लिप्सा नहीं रही। ब्रह्मा को अपनी इस प्रकार की सृष्टि से लाभ नहीं हुआ और वह चिन्ताग्रस्त हो विचारमग्न रहने लगे। चिन्ताग्रस्तावस्था में सम्भवतः अपनी कार्य-सिद्धि की निराशा से उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ। फलतः उनके क्रोध से सूर्य के सम तेज धारण किये हुए एक पुरुष की उत्पत्ति हुई। इस पुरुष का रूप बड़ा ही भयंकर एवं तेजस्वी था। इसका आधा शरीर पुरुष-रूप तथा आधा स्त्री-रूप था। ब्रह्मा ने इसे अपने पुरुष तथा स्त्री रूप में विभक्त करने का आदेश दिया तथा उस पुरुष ने ब्रह्मा की आज्ञा का तत्क्षण पालन किया। ब्रह्मा ने पुनः पुरुष को अपने पुरुष-रूप में विलग करने का निर्देश दिया, अत एव उसने अपने पुरुष-रूप को ग्यारह रुद्रों में बाँट

---

१. **उपरिवत्**, ३.३०-३२

२. **उपरिवत्**, १७१.२१-२२

३. '**मरुत्वती**' शब्द को पुराणों ने वैदिक साहित्य से उधार लिया है। यह शब्द ऋग्वेद में कई स्थानों पर मिलता है। वहाँ सरस्वती का सम्बन्ध मरुतों से दिखाया गया है और उसे मरुत्सखा (७.९६.२), मरुत्वती (२.३०.८) तथा मरुत्सु भारती (१.१४२.९) कहा गया है। इन सन्दर्भों से सरस्वती मरुतों की सखा-स्वरूप मानी जा सकती है अथवा इनसे सरस्वती का मरुतों से प्रगाढ सम्बन्ध प्रकट होता है। यहाँ मरुत्वती सरस्वती की उपाधि अथवा विशेषण है, परन्तु पुराणों में मरुत्वती तथा सरस्वती ब्रह्मा की दो भिन्न सन्तति हैं।

४. **मत्स्यपु०** १७१.३२-३६

५. **पद्मपु०** ५.३७.७९-८०

दिया ।[1] पुरुष-रूप की अपेक्षा पुरुष का स्त्री रूप अत्यन्त ही विलक्षण था । उसका दक्षिण भाग श्वेत तथा वाम भाग कृष्ण वर्ण था । ब्रह्मा ने पूर्ववत् पुरुष के स्त्री-रूप को आदेश दिया कि वह अपने कृष्ण तथा श्वेत भागों को अलग-अलग कर दे । अन्ततोगत्वा ऐसा ही हुआ । यही श्वेत भाग **स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती** तथा **गौरी** के रूप में प्रख्यात हुआ । इस प्रकार सरस्वती गौरी (श्वेत वर्णा देवी) का प्रतिनिधित्व करती है, जो पुरुष के स्त्री-रूप अंश का श्वेत भाग है ।

वायुपुराण के एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि ब्रह्मा ने सरस्वती की उत्पत्ति **विश्वरूपा** में की । इस सम्बन्ध में उसका कथन है कि ब्रह्मा की कोई सन्तान नहीं थी । एतदर्थ उन्होंने ध्यान धारण किया, जिससे सरस्वती घोर शब्द करती हुई विश्वरूपा के रूप में उत्पन्न हुई ।[2] यह उनकी मानस सृष्टि तथा प्रकृति-रूप थी ।

४. ब्रह्माण्डपुराणः

इस पुराण में सर्वप्रथम पुरुष तथा स्त्री के रूप में एक दम्पती-प्रसव का वर्णन मिलता है । इसका उत्पत्ति-स्थल महालक्ष्मी है । प्रकृत-संदर्भ में यहाँ वर्णन मिलता है कि महालक्ष्मी ने सर्वप्रथम तीन अण्डों को उत्पन्न किया । एक अण्डे से ब्रह्मा की श्री के साथ, दूसरे से सरस्वती की शिव के साथ तथा तीसरे से विष्णु की अम्बिका के साथ उत्पत्ति हुई ।[3]

ये तीनों अण्डे प्राथमिक रूप से हिरण्यगर्भ प्रजापति की अवस्था को द्योतित करते हैं । तात्पर्य यह है कि सृष्टि के पूर्व कुछ नहीं था । सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई । यह सभी प्राणियों का स्वामी है । स्वर्ग एवं पृथ्वी का अवलम्बन है ।

---

१. डॉ० आचार्य बलदेव उपाध्याय, **पुराण-विमर्श** (वाराणसी, **१९६५**), पृ० २८३-२८४, "इनसे पूर्व सनन्दन, सनातन आदि चारो कुमारों की सृष्टि ब्रह्मा ने सृष्टि की वृद्धि के लिए की थी; सन्तान तथा संसार के प्रति उनके औदासीन्य तथा निरपेक्ष-भाव को देखकर पितामह के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । उसी समय क्रोधदीप्त तथा भृकुटि-कुटिल ललाट से प्रचण्ड सूर्य के समान प्रकाशमान रुद्र का अविर्भाव हुआ । रुद्र के शरीर का वैशिष्ट्य यह था कि उनका आधा शरीर नर के आकार में था और आधा शरीर नारी के आकार में था । ब्रह्माजी के आदेश से रुद्र ने अपने शरीर का द्विधा विभाजन किया—स्त्री रूप में और पुरुष रूप में । पुरुष भाग को ग्यारह भागों में पुनर्विभक्त किया तथा स्त्री-भाग को सौम्य-क्रूर, शान्त-अशान्त, श्याम-गौर आदि अनेक रूपों में विभक्त किया । रुद्र द्वारा आविर्भावित यह सृष्टि रौद्री सृष्टि के नाम से पुराणों में अभिहित की गई है ।"

२. **वायुपु०** ९.७१-८७

३. **उपरिवत्**, २३.३७-३८

यह जीवन-प्रदान करता है और उसकी आज्ञा का पालन देवगण करते हैं। यह देवों का भी देव है। इस प्रकार की बड़ी सुन्दर दार्शनिक कल्पना हिरण्यगर्भ के बारे में ऋग्वेद में की गई है। यही हिरण्यगर्भ प्रजापत्ति (**'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव', ऋ०** १०.१२१.१०) स्वरूप है। पुराणों में ब्रह्मा को प्रजापति कहा गया है। यह ब्रह्मा सर्वशक्तिमान् परमात्मा तथा महालक्ष्मी से समुद्भूत है। जिस प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों देवों की उत्पत्ति मानी जाती है,[1] उसी प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती तथा अम्बिका तीन पौराणिक देवियों की उत्पत्ति महालक्ष्मी से मानी गई है।

इस सन्दर्भ में एक बहुत ही सुन्दर प्रसङ्ग मिलता है, जिसके अनुसार सरस्वती की उत्पत्ति का प्रसङ्ग वर्णित है। कहा जाता है कि एक देवी है, जो सृष्टि के समय विभिन्न रूपों को धारण करती है। वह देवी महालक्ष्मी के आज्ञानुसार अपने को स्त्री तथा पुरुष द्विधा रूप में विभक्त करती है। जिस प्रकार पुरुष-रूप के विभिन्न नाम हैं, उसी प्रकार स्त्री-रूप के सरस्वती के पर्यायवाचक **विद्या, भाषा, स्वर, अक्षर** तथा **कामधेनु** नाम हैं। महालक्ष्मी से सत्त्वोत्पत्ति का नाम **महाविद्या, महावीणा, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु** आदि हैं। पूर्व की भाँति ये सब नाम भी सरस्वती के पर्याय हैं।[2]

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि ब्रह्मा की ब्राह्मी, मानसी तथा रौद्री तीन प्रकार की सृष्टियाँ हैं। इन्होंने सर्वप्रथम लोकों की उत्पत्ति की। तदनन्तर अपने पुत्रों तथा कन्याओं को उत्पन्न किया। ये उनकी ब्राह्मी सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं। यदि दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाय, तो ब्रह्मा से सरस्वती की उत्पत्ति मनसिज है। पुराणों की यह प्रमुख विशेषता रही है कि वे अति सूक्ष्म एवं दार्शनिक विषय को भी बड़े ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ तक कि उन भावों के चिन्तन में स्थूलता का आश्रय लिया है, ताकि पाठक उनको भली-भाँति समझ लें और उसका उन पर प्रभाव पड़े। फलतः ब्रह्मा का सरस्वती को पुत्री-रूप में उत्पन्न करना, उससे विवाह करना तथा युग्म से सन्तानोत्पत्ति[3], ये सम्पूर्ण प्रतीकात्मक अथवा आलङ्कारिक वर्णन हैं। सरस्वती को **ऋग्वेद** तथा अन्य वेदों में विभिन्न रूप मिलते हैं। **ब्राह्मणों** में आकर उसका वाक् से तादात्म्य स्थापित हो गया है।[4] पौराणिक युग में इस वाग्रूपी

---

१. तु० आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल, **मार्कण्डेयपुराणः एक अध्ययन** (वाराणसी, १९६१), पृ० ६४-६५

२. टी० ए० गोपीनाथ राय, **एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, भाग १ (२) (मद्रास, १९१४), पृ० ३३५-३३६

३. **मत्स्यपु०** २.३०-४३; ३.४३-४४

४. **श० ब्रा०** २.५.४.६; ३.१.४.९,१४, ९.१.७-९; ४.२.५.१४, ६.३.३; ५.२. २.१३, १४, ३.४.३, ५.४.१६; ७.५.१.३१; ९.३.४.१७; १३.१.८.५; १४.२.१.१२; **तै० ब्रा०** १.३.४.५, ८.५.६; ३.८.११.२; **ऐ० ब्रा०** २. २४; ३.१-२,३७; ६.७; **ताण्ड्यब्रा०** १६.५.१६; **गो० ब्रा०** २.१.२०; **शा० ब्रा०** ५.२; १२.८; १४.४

सरस्वती का वैविध्य मिलता है। यहाँ वह वाक्, वाग्देवी, ज्ञानाधिदेवी, वक्तृत्वदेवी आदि कही गई है।[1] यहीं पुराणों में वाक् की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से बताई गई है।[2] अत एव यहाँ वाक् की मनोवैज्ञानिक विवेचना अपेक्षित है।

वाक् मस्तिष्क की उपज है। इसे एक ब्राह्मणिक उदाहरण से भली-भाँति समझा जा सकता है। कहा जाता है कि मस्तिष्क 'रस' एवं 'बल' से अपनी निष्क्रिय अवस्था में समान रूप से परिपूर्ण (**'रसबलसममात्रावच्छिन्न'**) रहता है। मस्तिष्क की इस दशा-विशेष में किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होता है, लेकिन जब उसमें किसी प्रकार की अभिव्यक्ति की इच्छा होती है, तब वह श्वास में परिणत हो जाता है। साथ ही, जब यह अभिव्यक्ति की इच्छा अत्यन्त बलवती होती है, तब यह मस्तिष्क वाग्रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मा की मानस उत्पत्ति का तात्पर्य वाक् में माना जा सकता है।

वाक् का व्यापक अर्थ ज्ञानसागर-रूप में लिया जाता है। ज्ञान के प्रमुख स्रोत वेद तथा शास्त्र हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने अपने मुख से सम्पूर्ण वेदों तथा शास्त्रों की उत्पत्ति की।[3] सरस्वती वेद-रूप (ज्ञान) है। ब्रह्मा के चारों मुख चारो वेदों का प्रतिनिधित्व करते हैं।[4] सरस्वती भी वाग्रूप में ब्रह्मा के चारो मुखों से प्रसूत हुई है और वह चारो वेदों का प्रतिनिधित्व करती है।[5] प्रकृत विवेचन के आधार पर ब्रह्मा से सरस्वती की उत्पत्ति का तात्पर्य वाग्रूप ज्ञान की सृष्टि है। अन्यत्र वह शक्ति (कारण-संसार के उद्भव तथा प्रसार में) की प्रतीक है तथा इसी रूप मे ब्रह्मेतर देवों से प्रसूत माना जाना चाहिए।

---

१. **पद्मपु०** ५.२२.१८६; **स्कन्दपु०** ७.३३.२२; **मार्क० पु०** २३.५७; **स्कन्दपु०** ६.४६.२६; **ब्रह्माण्डपु०** ४.३९.७४; **स्कन्दपु०** ६.४६.२६६; **ब्रह्मवै० पु०** २.४.७३, ४.७५-८५, ५.११ इत्यादि।

२. **भागवतपु०** ३.१२.२६

३. **मत्स्यपु०** ३.२-४

४. तु० डॉ० प्रियबाला शाह, **विष्णुधर्मोत्तरपुराण**, भाग ३ (बड़ौदा, १९६१), पृ० १४० : "The four faces of Brahman represent the four Vedas; the eastern Rgveda, the southern Yajurveda, the western Samaveda and the northern Atharvaveda".

५. तु० डॉ० रामशङ्कर भट्टाचार्य, **पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन** (प्रयाग, १९६५ ई०), पृ० १२२, ३७८-३७९

—६—

सरस्वती का पौराणिक नदी-रूप

मानव-जीवन में नदियों एवं पर्वतों का सदैव से महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने मनुष्य-जाति को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि अनेक दृष्टिकोणों से इनकी महत्ता है। नदियाँ हमारी न केवल भौतिक आकाक्षाँओं की पूरक रही हैं, अपितु उनसे एक दिव्य संदेश मिलता रहा है और वे 'दिव्य प्रेरणा का स्रोत' समझी जाती रही हैं। सर्वात्मदर्शी ऋषियों ने उनमें जीवन का साक्षात्कार किया है तथा परम्परा से हम भी तद्वत् आभास करते रहे हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि आदि ऋषि आद्यन्त स्थूल प्रकृतिवादी नहीं थे, प्रत्युत् प्रकृति के प्रति उनका अपना एक विशेष प्रकार का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण था। इस दृष्टिकोण के आधार पर उन्होंने प्रकृति के भिन्न-भिन्न पदार्थों को भिन्न-भिन्न प्रतीकों का रूप दे रखा था। फलतः उनसे बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव की अपेक्षा रही। स्थूल प्रकृति के भीतर मस्तिष्क एवं आत्मा[१] की सत्ता है। वैज्ञानिक युग में अन्वेषणों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है कि पेड़-पौधों में जीवन एवं अनुभूति-भावना है। जब जल अथवा जलाशयों की उपासना 'सन्तति' अथवा किसी 'वरदान' की आशा से की जाती है[२], तब अप्रत्यक्ष-रूप से हम उनमें जीवत्व स्वीकार कर ही लेते हैं। जीवत्व की यह कल्पना और साकार हो उठती है, जब हम आदि काल से ही नदी-विशेष को तन्नामक देवी-विशेष से प्रतिष्ठित करते हैं।[३] ऐसी स्थिति में उस देवी को उस नदी-विशेष की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। सरस्वती को वैदिक काल से ही ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त रही है[४]। ऋग्वेद में 'दिव्य जल' (दिव्या आपः) का वर्णन बहुधा हुआ है। यह दिव्य जल सामान्य-रूप से सभी नदियों का वाचक है, जिनमें सरस्वती प्रधान है।[५] पुराणों में सरस्वती की इस वैदिक मर्यादा की न केवल प्रतिष्ठा

---

१. श्री अरविन्दो, **ऑन द वेद** (पाण्डिचेरी, १९५६), पृ०, १०४-१०५

२. **ऋग्वेद**, १०।३०।१२, सरस्वती ने 'वध्र्यश्व' को 'दिवोदास' नामक पुत्र 'वरदानस्वरूप, दिया था, तु० **वही**, ६।६१।१

३. आनन्द स्वरूप गुप्त, 'सरस्वती एज़ द रीवर गाडेस इन् द पुराणाज़' **प्रोसीडिङ्गस् एण्ड ट्रान्सैक्शन्स ऑफ द ऑल-इण्डिया ओरिएण्टल कॉन्फ्रेन्स**, भाग-२ (गौहाटी, १९६५), पृ० ६९

४. यास्क, **निरुक्त**, २।२३, "**तत्र सरस्वत्येकस्य नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति**"

५. लूइस रेनु, **वैदिक इण्डिया** (कलकत्ता, १९६७), पृ० ७१

है, अपितु उसका और भी माहात्म्य वर्णित है। यहाँ सरस्वती को **'कामगा'** कहा गया है। वह मेघों में 'जल-सर्जन' करती है तथा सभी जल 'सरस्वती' नाम से व्यवहृत हैं।[1]

उपर्युक्त पौराणिक वचन से सरस्वती का 'दिव्यत्व' सहज सिद्ध है। यही नहीं, बल्कि उसका दिव्यत्व यहाँ पूर्णरूप से निखर चुका है। सरस्वती के 'नदीत्व' की कल्पना का एक अन्य वैचित्र्य, उसके वैदिक रीति की कल्पना से भिन्नता में है। यहाँ सरस्वती नदी 'सरस्वती-देवी' का प्रारूप है।[2] वह प्रारम्भ से ही 'नदी-देवता' रही है, न कि तन्नामक किसी देवी से अधिष्ठित।[3] इस कथन की पुष्टि मूर्तिविद्या-लब्ध प्रमाण द्वारा की जा सकती है। मूर्ति-विद्या के क्षेत्र में सरस्वती के हाथ में प्रायः 'कमण्डलु' दिखाया गया है। यह पात्र रिक्त नहीं है, बल्कि जल-पूरित है। जल भी साधारण नहीं, बल्कि 'दिव्य' है। यहाँ सरस्वती प्रथमतः देवी है, तदनन्तर उसके हाथ में कमण्डलुस्थ जल। यह प्रत्यक्ष प्रमाण प्रकारान्तर से सरस्वती को 'नदी-देवता' घोषित करता है[4] और जल उसके दिव्यत्व एवं प्रारम्भिक जल-सम्बन्ध को भी।[5] पुराणों के अनुसार सरस्वती को मुख्यतः दो[6] रूपों में देखा जा सकता है :

(१) ज्ञान एवं वक्तृत्व की देवी,
(२) नदी अथवा नदी-देवता।

प्रकृत निबन्ध में सरस्वती के पौराणिक नदी-देवता-रूप का विवेचन निम्न शीर्षकों के आधार पर किया गया है :

(१) सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति,
(२) सरस्वती की पौराणिक पवित्रता,
(३) सरस्वती के कतिपय पौराणिक विशेषण।

१. सरस्वती की पौराणिक उत्पत्तिः

पुराणों का विषय वस्तुतः बड़ा विशाल एवं विस्तृत है। यही कारण है कि पुराणों की संख्या भी अगणित है। जीवन का कोई भी स्वारस्य इनसे अछूता नहीं रहा

---

१. **वामनपुराण**, ४०.१४
"त्वमेव कामगा देवी मेघेषु सृजसे पयः। सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयं बहामहे"
२. द्र० सरस्वत्युत्पत्ति-विषयक विचार, पृ० ३४-३६
३. आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६६
४. **वही**, पृ० ६६-७०
५. कमण्डलु-जल एवं उसके दिव्यत्व के लिए तु० मुहम्मद इसराइल खाँ, 'पुराणों में सरस्वती की प्रतिमा', **प्राच्य प्रज्ञा**, वर्ष २ अङ्क १ (संस्कृत विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, १९६९), पृ० ६१-६२
६. आनन्द स्वरूप, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६९-७०

है। अस्तु, नदियों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। पुराणों में नाना प्रकार की नदियों का वर्णन स्थान-स्थान पर स्वाभाविक रूप से किया गया है। उनमें भी सरस्वती-विषयक विचार बड़े ही संयत रूप से प्रस्तुत किये गये है। उसके उत्पत्ति-विषयक[1] प्रश्न को मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) धार्मिक,

(२) भौतिक।

(अ) धार्मिक उत्पत्ति :

धार्मिक विश्वासों के अनुसार सरस्वती पहले देवी थी। तत्पश्चात् कई कारणों से उसे नदी होना पड़ा। उन प्रमुख कारणों का धार्मिक विवेचन निम्नलिखित है :

(१) **ब्रह्मवैवर्तपुराण** के अनुसार सरस्वती हरि-पत्नी है। हरि की—सरस्वती, लक्ष्मी एवं गङ्गा तीन पत्नियाँ थीं तथा इन तीनों का निवास हरि के साथ स्वर्ग में था। एक बार गङ्गा ने सोत्कण्ठित दृष्टि से हरि को बारम्बार देखा। हरि उसके अभिप्राय को जानकर हँस पड़े। हरि का यह व्यवहार सरस्वती को नहीं भाया। फलतः क्रोध के आवेश में आकर उसने हरि के गङ्गा के प्रति प्रेमाधिक्य की भर्त्सना की। क्रोधाभिभूत सरस्वती की यह दशा देखकर हरि—सरस्वती, गङ्गा एवं लक्ष्मी तीनों को भीतर कक्ष में ही छोड़कर स्वयं बाहर निकल आये। लक्ष्मी ने अपने कोमल वचनों द्वारा सरस्वती को शान्त करने का अनेकधा प्रयत्न किया, पर वह विफल रही। सरस्वती ने उलटे ही लक्ष्मी को **'वृक्षारूपा'** एवं **'सरिद्रूपा'** सोने का शाप दे दिया। गङ्गा को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसने लक्ष्मी को सान्त्वना दी और दिये गये शाप की प्रतिक्रिया करती हुई बोली कि "सरस्वती स्वयं ही नदी होकर पृथ्वी-लोक पर चली जाय, जहाँ पापात्मा बसते हैं।" इस प्रकार के शाप के प्रतिकार में गङ्गा भी सरस्वती द्वारा तत्सदृश शाप से शप्त हुई।[2]

जब शाप के दान-प्रतिदान की प्रक्रिया चल ही रही थी कि इसी बीच हरि अन्दर प्रविष्ट हुए तथा सारी घटना को जो घट चुकी थी, उन्होंने सुना, पर अब वह कर ही क्या सकते थे। उन्होंने दुःख प्रकट किया और बोले कि "हे भारति (सर-

---

१. नदी से भिन्न देव्युत्पत्ति विषयक प्रश्न के लिये तु० **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, १।३।५४-५७, २।१।१ आगे, ४।१२ आगे; **मत्स्यपुराण**, ३।२-८, ३०-३२, १७१।२०-२१, ३२-३३; **पद्मपुराण**, ५।३७।७९-८०; **वायुपुराण**, ९।७१।८७, २३।३७-३८; **ब्रह्माण्डपुराण**, ४।४०५ आगे; आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल, **मार्कण्डेय पुराणः एक अध्ययन** (वाराणसी, १९६१), पृ० ९४-९५; टी. ए. गोपीनाथ राव, **एलिमेण्ट्स ऑफ द हिन्दू आइकोनेग्रैफी**, १-२ (मद्रास, १९१४), पृ० ३३५-३३६

२. **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २।६।१७-४०

स्वती) ! तुमने गङ्गा तथा निरपराध लक्ष्मी के साथ कलह खड़ा किया है, अत एव इसका परिणाम भोगो'। तुम पृथ्वी लोक चली जाओ। तुम्हारे समान गङ्गा भी शिव-निवास को चली जायेगी। पद्मा (लक्ष्मी) इस कलह में तटस्थ रही है, अत एव वह ही एकमात्र निरपराध होने के कारण मेरे साथ यहाँ स्वर्ग में रहेगी"[1]। तत्पश्चात् सरस्वती पृथ्वी-तल पर आ गयी। पृथ्वी-तल पर होने के कारण वह भारती कहलायी; ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी; वाणी की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण वाणी; सतत्प्रवहमान स्रोत की भाँति (**स्रोतस्येव**) सम्पूर्ण संसार को परिव्याप्त कर वर्तमान होने तथा हरि के सरोवर से सम्बद्ध होने के कारण 'सरस्वती' कहलाई।[2]

हम वैदिकेतर साहित्य में यह देखते हैं कि गङ्गा को सर्वाधिक महत्ता दी गई है। उसे शिव-सिर पर निवास करने वाली कहा गया है। आकाश-सरित् (आकाश-गङ्गा) मानकर इसकी अनन्य दिव्यता स्वीकार की गई है। गङ्गा का अस्तित्व पृथ्वी पर अब भी है, अत एव पौराणिक इस कथन को, कि वह पहले स्वर्ग में थी, तत्पश्चात् शिव के सिरस्थान को प्राप्त करती हुई पृथ्वी पर आई, अत एव दिव्य है—पर्याप्त सहारा एवं लोकप्रियता मिली है, परन्तु ऋग्वैदिक काल में सरस्वती की मर्यादा गङ्गा की अपेक्षा कई गुनी बढ़ी-चढ़ी थी। अपने विस्तार, गहनता, सततप्रवाह आदि गुणों के कारण वह 'लोह-दुर्ग' कहलाती थी[3], परन्तु जब यह नदी विनष्ट हो गयी, तो स्पष्ट है कि इसकी लोक-प्रियता को पर्याप्त आघात पहुँचा। पौराणिक विश्वास के अनुसार गङ्गा दिव्य है तथा उसका उद्‌गम वही है, जो सरस्वती का है। उससे सिद्ध है कि सरस्वती भी दिव्य हुई।

(२) **स्कन्दपुराण** में कुछ इसी प्रकार की कथा आती है। इसके अनुसार भी सरस्वती पहले एक देवी थी। पृथ्वी तल पर फैला हुआ समुद्र वडवाग्नि-आलुप्त था। इस वडवाग्नि को पाताल-लोक में करने तथा इसके कुप्रभाव से देवों को बचाने के निमित्त, भगवान् विष्णु ने स्वयं सरस्वती से प्रार्थना की, कि वह पृथ्वी पर पधारे।

---

१. **वही**, २।६।४१-५३

२. **वही**, ।२।७।१-३

"पुण्यक्षेत्रे ह्याजगाम भारते सा भारती।
गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥१॥
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया।
वागधिष्ठात्री सा तेन वाणी च कीर्तिता ॥२॥
सर्वविश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते।
हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥३॥"

३. तु० मुहम्मद इसराइल खाँ, 'सरस्वती के कतिपय ऋग्वैदिक विशेषणों की विवेचना' **नागरी प्रचारिणी पत्रिका-श्रद्धाञ्जलि अङ्क**(वाराणसी, सं. २०२४), पृ० ४७०-४७१

ब्रह्मा की सुयोग्या एवं आज्ञाकारिणी पुत्री होने से सरस्वती ने पिता की आज्ञा के बिना अन्यत्र जाना अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर विष्णु ने स्वयं ब्रह्मा से प्रार्थना किया कि वह सरस्वती को पृथ्वी पर जाने की अनुमति दे दें।[1] अन्त में ऐसा ही हुआ। सरस्वती सरिद्रूप में परिणत हो गई। स्वर्ग से हिमालय पर उतर कर, तत्रस्थ प्लक्ष-प्रास्रवण से होती हुई धरणि-पृष्ठ पर आ गई। वडवाग्नि के उत्पत्ति के विषय में पुराणों में वर्णित है कि जब दधीचि ऋषि को देवों ने छलपूर्वक मार डाला, तब ऋषि-पुत्र पिप्पलाद ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए घोर तप किया। इसके फलस्वरूप वडवाग्नि की उत्पत्ति हुई। देवों ने 'वडवाग्नि' को स्वर्ण-कलश में रखकर सरस्वती को दे दिया कि वह उसे समुद्र में न्यस्त कर दे। सरस्वती ने इस वडवाग्नि को लेकर पश्चिमी समुद्र में 'प्रभास' नामक स्थान के समीप छोड़ दिया।[2]

(३) सामान्यतया यह जन-श्रुति है कि जब सगर के ६०,००० पुत्र जलकर भस्म हो गये, तब उनका निस्तार करने के लिए राजा भगीरथ ने गङ्गा को पृथ्वी पर लाने की घोर तपस्या की तथा वह अपने इस प्रयत्न की सिद्धि में सफल भी हुए। पुराणों में सरस्वती के विषय में भी कुछ इसी प्रकार की कल्पना की गयी है, जिसके अनुसार मानवोद्धार एवं कल्याण के निमित्त क्रमशः पीताम्बर एवं मार्कण्डेय ऋषि सरस्वती को स्वर्ग से पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र प्रदेशों मे लाए।[3]

(४) **मत्स्य**,[4] **भागवत**[5] आदि पुराणों ने ब्रह्मा (पिता) एवं सरस्वती (पुत्री) के बीच औपन्यासिक प्रेम-प्रपञ्च की कल्पना की है। यह कल्पना किसी घटना अथवा कार्य की प्रतीक-रूप है।[6] इन पुराणों से ज्ञात होता है कि प्रेमातुर ब्रह्मा अपने इस साहस में सफल भी हुए, परन्तु **ब्रह्मपुराण** में इस अश्लीलता का परिहार किया गया है। इस पुराण में दो प्रकार के वर्णन पाए जाते हैं। एक के अनुसार यह कहा गया है कि सरस्वती का राजा पुरुरवा के साथ गुप्त प्रेम था। ब्रह्मा को जब यह ज्ञात हुआ, तो उन्होंने सरस्वती को नदी होने का शाप दे दिया। दूसरे के अनुसार सरस्वती का नदी-रूप धारण करना स्वैच्छिक है। कहा जाता है कि ब्रह्मा के प्रेम के भय से वह

---

१. **स्कन्दपुराण**, ७।३३।१३-१५

२. **वही**, ७।३३।४०-४१ तथा द्र० आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७१

३. **वामनपुराण**, ३७।१६-२३

४. **मत्स्यपुराण**, ३।३०-४३

५. **भागवतपुराण**, ३।१२।२८

६. तु० एस. जी. कांटवाला, 'द ब्रह्मा-सरस्वती एपीसोड इन द मत्स्यपुराण', **जनरल ऑफ ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट** (बड़ौदा, १९५८), पृ० ३८-४० तथा आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुराणविमर्श (वाराणसी, १९६४), पृ० २५९-२६०

स्वयं ही नदी बनकर गौतमी गङ्गा में मिल गयी।[1]

संक्षेपतः यहाँ सरस्वती का देवी से नदी में परिणत होने का विवेचन किया गया है। आगे इसके उद्गम-स्थल का वर्णन किया जा रहा है।

(ब) भौतिक उत्पत्ति :

(१) पुराणों में नदियों के उद्गम-स्थलों का वर्णन भिन्न-भिन्न स्थलों पर किया गया है। इन का वर्णन बड़ा ही सुसम्बद्ध है। नदियाँ पर्वतों से निकल कर मैदानों अथवा समुद्रों में गिरती हैं। पुराणों में भिन्न-भिन्न नदियों के स्रोतों का वर्णन स्थान-विशेष की दृष्टि से किया गया है। यथा—ऋक्ष-निःसृताः, परियात्र-निःसृताः, हिमवत्पाद-निःसृताः, मलय-निःसृताः, महेन्द्र-निःसृताः, विन्ध्यापाद-निःसृताः, शुक्तिमत्पाद-निःसृताः, सह्यपाद-निःसृताः इत्यादि।[2] इनमें सरस्वती का उद्गम 'हिमवत्पाद' है तथा उसी स्रोत से उद्भूत उसकी अन्य सहचारिणी नदियाँ—इक्षु, गोतमी, निश्चीरा, शतद्रु, इरावती, चन्द्रभागा, बाहुदा, सरयू, कुहू, तृतीया, यमुना, कौशिकी, दृषद्वती, लौहित्य, सिन्धु, गङ्गा, देविका, वितस्ता, गण्डकी, धूतपापा, विपाशा इत्यादि हैं।[3]

(२) यही नहीं, नदियों का वर्णन समुदाय-विशेष से सम्बद्ध रूप में भी पाया जाता है। इस यत्न में **स्कन्दपुराण** विशेष उल्लेखनीय है। यह भारतवर्ष की सम्पूर्ण नदियों को ग्यारह समुदायों में विभक्त करता है : (१) सीता-चक्षु समुदाय, (ब) सिन्धु समुदाय, (स)सरस्वती-दृषद्वती समुदाय, (द)गङ्गा-यमुना समुदाय, (य)ब्रह्मपुत्र समुदाय, (र) शिप्रामही समुदाय, (ल) शाभ्रमती समुदाय, (व) नर्मदा-ताप्ती समुदाय, (श) महानदी समुदाय, (ष) कृष्णा-गोदावरी समुदाय, तथा (ह) कावेरी कृतमाला समुदाय। इस प्रकार के विभाजनों में सरस्वती का सम्बन्ध 'सरस्वती-दृशद्वती' समुदाय से है। इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से बताई गई है। अनेक स्थानों एवं तदनुरूप विभिन्न नामों को धारण करती हुई, वह अन्ततोगत्वा पश्चिमी समुद्र में जा गिरती हैं।[4] यहाँ उसे ब्रह्मा से उत्पन्न कहा गया है, अत एव वह नदी-रूप में भी 'ब्रह्मा-पुत्री' हुई। इसकी पुष्टि श्री हेमचन्द्राचार्य के वचनानुसार भी की जा सकती है, जो सरस्वती नदी को (१)'ब्रह्म-

---

१. तु० आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७०-७१

२. यशपाल टण्डन, अ कान्कारडेन्स ऑफ पुराण काण्टेण्ट्स(विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्सटीच्यूट, होशिआरपुर, १९५२), पृ० ५१-५२

३. वही, पृ० ५२, तथा द्र० वासुदेवशरण अग्रवाल, **मार्कण्डेय पुराणः एक समीक्षात्मक अध्ययन** (इलाहाबाद, १९६१), पृ० १४६

४. डॉ० ए.बी.एल. अवस्थी, **स्टडीज़ इन स्कन्दपुराण**, भाग १ (लखनऊ, १९६६), पृ० १४९, १५३, १५४

पुत्री', तथा (२) 'सरस्वती' नाम से अभिहित करते हैं।[1]

(३) **मत्स्यपुराण** के अनुसार सरस्वती का आदि स्रोत सर्पसरोवर (**सर्पाणां तत्सरः**) है। इस सरोवर से 'सरस्वती' तथा 'ज्योतिष्मती' दो नदियों का अविर्भाव होता है। ये दोनों नदियाँ इससे निकल कर क्रमशः 'पूर्वी' एवं 'पश्चिमी' समुद्रों में गिरती है।[2]

(४) **वामनपुराण** सरस्वती को 'ब्रह्मसरोवर' से निकली हुई मानता है।[3] वास्तव में ब्रह्मसरोवर की कल्पना कवि-कल्पित अथवा मनसिज जान पड़ती है, क्योंकि इसकी भौतिक स्थिति अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी है। इसका तादात्म्य 'मानसरोवर' अथवा 'मानस-सर' से सम्भावित है, परन्तु इसकी स्थिति की कल्पना इतस्ततः की गई है। यह 'शिवालिक की पहाड़ियों' के पश्चिम में भी माना गया है तथा इससे सुदूर पूर्व दिशा में भी। यदि यह 'शिवालिक' के पश्चिम में स्थित है, तब निश्चित-रूप से इसे ऋग्वैदिक सरस्वती का उद्‌गम-स्थल नहीं माना जा सकता, क्योंकि सर्वसम्मत्या 'शिवालिक' ही वैदिक सरस्वती का उद्‌गम-स्थल माना गया है।[4] यदि इसे 'शिवालिक' के पूर्व में भी मानें, तो भी इससे वैदिक सरस्वती की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। वह केवल 'बङ्गाल' में होने वाली तन्नामक कोई नदी मानी जा सकती है,[5] न कि ऋग्वैदिक सरस्वती।

ऋग्वैदिक सरस्वती का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही हिमालय से रहा है, जैसा कि हम ने पहले देखा है, लेकिन काल-क्रम से नदियों का मार्ग सदैव परिवर्तित होता रहा है ; सरस्वती के विषय में भी यही बात लागू होती है। समयानुसार सरस्वती का स्थान परिवर्तन होता रहा और एक समय ऐसा आया, जब यह पूर्ण रूप से विलीन (गुप्ता) हो गई। इस पर साहित्यिक, धार्मिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, भूतत्त्वीय आदि अनेक दृष्टिकोणों से विचार हुए हैं और हो रहे हैं। लोगों में सामान्य विश्वास है कि यह नदी प्रयाग में गङ्गा एवं यमुना से मिलती है। प्रत्यक्षतः यहाँ गङ्गा एवं यमुना दो

---

१. श्री हेमचन्द्राचार्य, **अभिधानचिन्तामणि**, ४।१५१
२. **मत्स्यपुराण**, १२१।६४-६५
३. **वामनपुराण**, ४०।१३
४. डी. एन. वाडिया, **जियालोजी ऑफ इण्डिया** (न्यूयार्क, १९६६), पृ० १०; तु० एन. एन. गोडबोले, **ऋग्वैदिक सरस्वती** (राजस्थान सरकार, १९६३), पृ० १७
५. 'इण्डो-ब्रह्म रीवर' सम्बन्धी विचार-धारा से तु० दिवप्रसाद दास गुप्त, 'आइडेण्टिफिकेशन ऑफ द एन्शिएण्ट सरस्वती रीवर', "**प्रोसीडिङ्गस् एण्ड ट्रान्सैक्शन्स ऑफ आल-इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स**(अन्नामलाई नगर, १९५८), पृ० ३६ आगे

नदियाँ ही दिखाई पड़ती हैं, पर यह विश्वास कैसे हो कि 'सरस्वती' भी यहाँ आकर गङ्गा एवं यमुना से मिलती है। वाडिया जैसे संसार-प्रसिद्ध भूतत्व-वेत्ता का कहना है कि सरस्वती यमुना के पश्चिम में बहा करती थी, लेकिन जब पृथ्वी की उथल-पुथल हुई, उस समय सरस्वती अपना पुराना मार्ग छोड़ कर पूर्व-दिशा की ओर बढ़ने लगी तथा एक समय ऐसा आया, जब कि वह यमुना में पूर्णतया विलीन हो गई।[१] यह मत सर्वथा निर्दोष नहीं माना जा सकता, क्योंकि हम आगे चलकर देखेंगे कि इस नदी का पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा की ओर जाना सिद्ध होता है।[२]

धार्मिक निष्ठा की दृष्ठि से यह कहा जाता है कि सरस्वती एक महती पवित्र नदी थी। वह कलियुग को देखकर अथवा निषादों के स्पर्श-भय से पृथ्वी में छुप गई तथा अन्तःसलिला होकर प्रयाग में गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम पर प्रकट होती है। एक ओर इस विचारधारा के भी मानने वाले लोग हैं कि प्रयाग में गङ्गा-यमुना से मिलने वाली सरस्वती नामक एक छोटी सी नदी रही है।[३] लोगों ने उसे ही भ्रमवश वैदिक सरस्वती समझा। काल-क्रम से इसके लुप्त हो जाने पर लोगों की पूर्वकथित विचार-धारा बनी रही। तथ्य तो यह है कि सामान्य-जन-विश्वास में 'माडर्न' सरसूति को वैदिक सरस्वती की मान्यता मिल चुकी है। स्थानीय लोगों में इसके 'वैदिक सरस्वती' होने की पूरी आस्था है। आज-कल इसे 'घग्घर' कहते हैं,[४] जिसका उद्गम-स्थल शिवालिक की पहाड़ियाँ हैं। आगे चलकर हनुमानगढ़ के पास यह घग्घर नहर (एक पुरानी नदी का पेट) से मिलती है, जिसका उद्गम-स्थल शिवालिक की पहाड़ियाँ ही हैं। इन दोनों का मिला-जुला स्रोत भी सामान्यतया 'घग्घर' अथवा 'सरसूति-घग्घर' कहलाता है। केवल 'घग्घर' कहे जाने पर भी सरसूति (सरस्वती का बिगड़ा रूप) नदी की अभिव्यक्ति होती रहती है। यह 'स्रोत' पटियाला, हिसार, बीकानेर, बहावलपुर आदि स्थानों से होता हुआ पाकिस्तानी राज्य में प्रविष्ट होता है, जहाँ 'हाकरा' नाम से अभिहित होता है।[५] यहाँ 'हाकरा' 'सुक्कर-बन्ध-योजना' के मार्ग से होता हुआ अन्त

---

१. डी. एन. वाडिया, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३६२

२. तु० प्रकृत लेख, पृ० ४६-५०

३. तु० एन. एन. गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २०, : "The so-called Sarasvati near Allahabad was perhpaps a small stream and the real Sarasvati is left behind near Hanumangarh."

४. सर ओरेल स्टाइन, **ज्यागरफिकल जनरल**, भाग ६६ (१६४२), पृ० १३७ आगे

५. रे चौधुरी एच.सी., 'द सरस्वती', **साइन्स एण्ड कल्चर** ८ (१२), १६४२, पृ० ४६८; एन. एन. गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ पृ० १६, "The Ghaggar is known as Hakra when it enters the Pakistan area."

में कच्छ में प्रविष्ट हो गया है ।[१]

यह सरस्वती का आधुनिक मार्ग है, जिसे हम पौराणिक दृष्टि से देखना चाहेंगे । यहाँ एक मूल बात ध्यान देने की है, जो भूतत्वीय-शिला पर आधारित है। भूतत्ववेत्ताओं का कथन है कि प्राचीन काल में समस्त राजस्थान समुद्र के गर्भ में था। यहाँ एक विशाल समुद्र हिलोरें भरता था, जिसका नाम 'राजपुताना का समुद्र'[२] था। इसके दक्षिण की दिशा में अरावली की पहाड़ियाँ थीं, जो सुदूर पूर्व एवं पश्चिम तक फैली हुई थीं और लगभग चार मील ऊँची थीं । उन दिनों हिमालय-पर्वत इतना ऊँचा नहीं था, जितना कि आज हम देखते हैं । वह उन दिनों पृथ्वी के गर्भ से उठा रहा था ।[३] प्रकृति-निर्माण-काल में जब उथल-पुथल प्रारम्भ हुई, तब भारत का सर्वोच्च पर्वत 'अरावली' धाराशायी हो गया । उसके अवशेष चारो ओर बिखर गये । अधिकांश अवशेष राजपुताने के समुद्र में जा गिरा । परिणामस्वरूप इस समुद्र में गिरने वाली नदियों की दिशाएँ बदल गईं । गङ्गा एवं यमुना और पूर्व-दिशा में चली गईं तथा सरस्वती एवं दृषद्वती पश्चिमतर हो गईं ।[४] पुराणों में इसका निर्देश प्रकारान्तर से हुआ हैं । यहाँ सरस्वती क्रमशः 'प्राची'[५] एवं '**पश्चिमाभिमुखी**'[६] कही गई है । तात्पर्य यह है कि जब सरस्वती प्राक्-परिवर्तन 'राजपुताना सागर' में गिरती थी, तब वह '**प्राची**' थी, परन्तु जब परिवर्तन के कारण उसकी दिशा बदल गई अर्थात् अरब सागर में गिरने लगी, तब '**पश्चिमाभिमुखी**' कहलाई । इस कारण '**प्राची**' एवं '**पश्चिमाभिमुखी**' सरस्वती एक ही हैं । इसको 'फार्मर' एवं 'लेटर' कहना चाहिए,[७] न कि इनका तादात्म्य क्रमशः 'सरस्वती' एवं 'सिन्धु' से करना युक्त है ।[८] ऐसा करना उचित नहीं होगा, क्योंकि इनके तादात्म्य की सम्भावना विस्तार धारण कर लेगी । ऐसी स्थिति में

---

१. **वही**, पृ० २, २०-२१

२. ए. सी. दास, **ऋग्वैदिक इण्डिया** (कलकत्ता, १९२७), पृ० १७

३. एन. एन. गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८

४. **वही**, पृ० २

५. **पद्मपुराण**, ५।१८।२१७-२८।१२३; **भागवतपुराण**, १०।७८।१९

६. **स्कन्दपुराण**, ७।३५।२६

७. ए. ए. मैक्डानेल एण्ड ए.वी. कीथ, **वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स**, भाग-२ (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९५८), पृ० ४२६, "But There are strong reasons to accept the indentification of the later and the earlier Sarasvati throughout."

८. के. सी. चट्टोपाध्याय, 'ऋग्वैदिक रीवर सरस्वती', **जरनल ऑफ द डिपार्टमेन्ट ऑफ लेटर्स**, भाग १५, कलकत्ता; बी. आर. शर्मा द्वारा उनके उद्धृत विचार, **द कलकत्ता रिव्यु**, भाग ११२, न० १ (१९४५), पृ० ५३ आगे तथा मैक्स-म्यूलर, **सेक्रेट बुक्स ऑफ द इस्ट**, भाग ३२ (दिल्ली, १९६४), पृ० ६०

'लेटर' का अर्थ 'अर्थन्दव' (अफ़गानिस्तान की एक नदी का नाम) तथा 'हेलमन्द' (इस अफ़गानिस्तानी नदी का इरानियन नाम हरक़्वैती) से भी व्यक्त होने लगेगा[१] तथा पूर्वी तन्नामक किसी नदी अथवा स्रोत से भी।

इस नदी का निश्चिकरण '**विनशन**' के आधार पर करना अधिक युक्त प्रतीत होता है। '**विनशन**' वह स्थान है, जहाँ सरस्वती लुप्तप्राय हो गई। यह स्थान जिला पटियाला में पड़ता है।[२] लुप्त होने के पूर्व इसकी गति में 'स्खलन' एवं 'विकृतिप्राय' आ चुकी थी। इसकी गति स्थान-स्थान पर अवरुद्ध हो चुकी थी तथा कई स्थानों पर गहरे जलकुण्ड बन चुके थे। '**सरस्वती तु पञ्चधा**'[३] सम्भवत: इसी ओर सङ्केत करता है।[४] कुछ लोगों के विचार से इसके द्वारा 'पाँच सरस्वती' (सामान्य अर्थ में पाँच नदियों) का बोध माना गया है।[५] पुराणों में सरस्वती की एतत्सम्बन्धी गति का बड़ा सुन्दर सङ्केत '**दृश्यादृश्यगतिः**'[६] द्वारा किया गया है। सरस्वती जब मरणासन्न अवस्था में दिखाई देती थी, तब '**दृश्यगतिः**' थी और जब छुप जाती थी, तब '**अदृश्यगतिः**'। पुराणों के अनुसार भी सरस्वती का पूर्वकथित मार्ग रहा है। वह हिमालय से निकल कर 'प्लक्ष प्रास्रवण' से होती हुई मैदानों में आती है।[७] सर्वप्रथम आद-बद्री आती है।[८]

---

१. तु० आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७७

२. मैक्स म्यूलर, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, **भाग-१४** (दिल्ली, **१९६५**), पृ० **२**, फूट नोट ८

३. **यजुर्वेद**, ३३।११

४. रे चौधुरी, एच. सी., पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४७२

५. आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७६

६. **वामनपुराण**, ३२।३; तथा डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार, 'टैक्ट्स ऑफ द पुराणिक लिस्ट ऑफ रीवर्स', **द इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली**, भाग-२७, न० ३, पृ० २१६, "Sarasvati rises in the Sirmur hills of the Siwalik ranges in the Himalayas and emerges into the plains at Ad-Badri in the Ambala District, Punjab. at disappears once at Chalaur, but reappears It Bhawanipur; then it disappears at Balchappar but again appears at Bara-Khera..." इस सिरमूर से निकलने वाली सरस्वती तथा वैदिक सरस्वती को दो (तु० आनन्द स्वरूप गुप्त, पूर्वोद्धृत, ग्रन्थ, पृ० ७६) मानना ठीक नहीं। दोनों एक हैं (तु० डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१६)

७. डॉ० ए.बी.एल. अवस्थी, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० **१५**३; तथा तु० **स्कन्दपुराण**, ७।३३।४०-४१

"सतो विसृज्य तां देवीं नदीभूत्वा सरस्वती ॥
हिमवतं गिरिं प्राप्य प्लक्षात् तत्र विनिर्गता।
अवतीर्णा धरापृष्ठ......................॥"

८. डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१६

तदनन्तर पूर्वकथित मार्गों से होती हुई कुरुक्षेत्र पहुँचती है तथा **'कुरुक्षेत्रप्रदायिनी'**[१] की उपाधि ग्रहण करती है। सरस्वती का एक अन्य नाम **'अंशुमती'** है। यह नामकरण सर्वथा साभिप्राय है। **'अंशुमती**, कुरुक्षेत्र की सरस्वती ही है, जिसका तात्पर्य 'सोम से परिपूर्ण' है। कहा गया है कि एक बार सोम, वृत्र के भय से भागकर **'अंशुमती'** में छुप गया। । फलस्वरूप देवगण भी वहीं आकर रहने लगे तथा वहाँ 'सोमयज्ञ' की स्थापना की।[२] यह यह **'अंशुमती'** निश्चय ही 'वैदिक सरस्वती' है। **ब्राह्मण ग्रन्थों में देवों का सोम** के प्रति अत्याकर्षण दिखा गया है। वाक् (वाणी) सोम-प्रदान करने में देवों की अभूतपूर्व सहायता करती है।[३] इस वाक् को सरस्वती का विकासात्मक रूप समझना चाहिए, ब्रह्माणिक सिद्धान्त **'वाग्वै सरस्वती'** के द्वारा सरस्वती सिद्ध किया गया है। कुरुक्षेत्र के बाद सरस्वती राजस्थान के 'पुष्कर'[४] से होती हुई कच्छ में जा गिरती है।[५]

२. सरस्वती की पौराणिक पवित्रता:

प्रारम्भ काल से ही आर्यों ने अपने धार्मिक कार्यों एवं यज्ञों में सरस्वती को महती प्रतिष्ठा दे रखी थी। इसका प्रमाण यह है कि ऋग्वैदिक कालीन यज्ञों में उसका बारम्बार आह्वाहन किया गया है।[६] सम्भवतः उसको यज्ञ की देवी ही मान कर ऐसा किया गया है। पुराणों ने भी उसकी वैदिक प्रतिष्ठा को जीवित रखा है।

ब्रह्माण्डपुराण में एक स्थल पर कावेरी, कृष्णवेणा, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयु, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी तथा पावनी नदियों का विवाह अग्नि के साथ बताया गया है।[७] अग्नि को प्रकाश एवं पवित्रता का प्रतीक माना गया। जब अग्नि का तादात्म्य सरस्वती से किया जाता है,[८] तब अपरोक्ष-रूप से अग्नि के गुणों का सरस्वती पर आधान हुआ। **ब्रह्माण्डपुराण** के उपर्युक्त कथन का तात्पर्य सम्भवतया यह जान पड़ता है कि आर्य लोग इन नदियों के

---

१. **वामनपुराण**, ३२।१

२. डॉ० सूर्यकान्त, 'सरस, सोम एण्ड सीर', **ऐनल्स ऑफ द भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, भाग-३८ (पूना, १९५८), पृ० ११५

३. तु० मुहम्मद इसराइल खाँ, ब्राह्माणिक लेजेण्ड ऑफ वाक् एण्ड गन्धर्वस्', **मैसूर ओरिएण्टलिस्ट**, भाग-२, न० १ (मैसूर, १९६९), पृ० २६-२७

४. **वामनपुराण**, ३७।२३

५. एन. एन. गोडबोले, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २,३२-३३

६. तु० **ऋग्वेद**, १।३।१०-११।१३९ (५.५.८), १४२।९; ३।४।८ (७।२।८); ५।४३।११; ७।९५।४; १०।१७।८-११०।८

७. **ब्रह्माण्डपुराण**, २।१२।१३-१६

८. **ऋग्वेद**, २।१।११

किनारे रहा करते थे। ये उनके लिए नितान्त सम्मान-जनक थीं, अत एव उनके सम्मानार्थ यज्ञाग्नि को प्रज्ज्वलित करना स्वाभाविक था। शनैः-शनैः वे दक्षिण-दिशा की ओर बढ़ने लगे, परन्तु उनके प्रति उनका सम्मान पूर्ववत् बना रहा। यही कारण है कि उत्तर भारत की नदियाँ दक्षिण की अपेक्षा अधिक सम्मानास्पद हैं। **ब्रह्मपुराण** की भाँति **अग्निपुराण** में भी पवित्र नदियों की एक लम्बी परम्परा मिलती है।[1]

अग्निपुराण ने नदी-विशेष की पवित्रता स्थान-विशेष पर बताई है। उसके अनुसार गङ्गा की पवित्रता कनखल में है, सरस्वती की कुरुक्षेत्र में, परन्तु नर्मदा की पवित्रता सर्वत्र है। नदी-जल विशेष की प्रशंसा में इस पुराण का कथन है कि सरस्वती का जल मनुष्य को तीन दिन में पवित्र बनाता है, यमुना का सात दिन में, गङ्गा का तत्क्षण; परन्तु नर्मदा केवल दृष्टिमात्र से ही सबको पूत करती है।[2] अस्तु, सरस्वती अपनी पवित्रता से सब पापों का भञ्जन करने वाली है, अत एव उसे **सर्वपापप्रणाशिनी**'[3] कहा गया है। सरस्वती का न केवल जल, अपितु तटप्रान्त भी अतीव पवित्र माना गया है।[4] पवित्र जलयुक्त (**पुण्यतोया**,[5] **पुण्यजला**[6]) होने के कारण उसे '**शुभ्रा**,[7] **पुण्या**[8] '**अतिपुण्या**'[9] आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

तपस्याचरण करने वाले ऋषियों को शान्त वातावरण की आवश्यकता होती है, जो उनके चित्तैकाग्रता में सहायक सिद्ध हो सके। सरस्वती का तटभाग अनुकूल वातावरण से युक्त था, अत एव वह ऋषिगणों से परिव्याप्त था।[10] ऋषिगण वहाँ अपने नित्य-कर्म का अनुष्ठान करते हुए रहा करते थे तथा सरस्वती के जल का पान कर अतिशयानन्द उठाते थे। इस प्रकार के ऋषियों में सर्वाधिक सम्मानार्ह ऋषि कर्दम थे। उनके विषय में प्रसिद्धि है कि वह सरस्वती के महान् भक्त थे एवं उसके किनारे रह कर दस हजार वर्षों तक घोर तप किया।[11] यहीं सरस्वती का वह स्थान है, जहाँ 'अश्वत्थ' वृक्ष के नीचे समाधिस्थ भगवान् श्रीकृष्ण ने 'आत्मोत्सर्ग कर दिया था।[12]

---

१. **अग्निपुराण**, २१९।६९-७२
२. **वही**, १६८।१०-११
३. **वामनपुराण**, ३२।३; **स्कन्दपुराण**, ७।३४।३१
४. **मत्स्यपुराण**, ७।३
५. **वामनपुराण**, ३२।२; ३७।२९,३८
६. **पद्मपुराण**, ५।२७।११९
७. **वामनपुराण**, ३२।२; **मार्कण्डेयपुराण**, २३।३०
८. **वामनपुराण**, ३२।२४, ३४।६
९. **वही**, ४२।९
१०. **भागवतपुराण**, ३।२२।२७
११. **वही**, ३।२१।६
१२. **वही**, ३।४।३-८

हम ने पहले यह देखा है कि सरस्वती नदी-रूप में भी '**ब्रह्मपुत्री**' कही गई है। ब्रह्मा का इसके प्रति अगाध स्नेह था। उसके स्नेहाधिक्य का स्पष्टीकरण एक लघु दृष्टान्त से किया जा सकता है। एक बार ब्रह्मा मरीचि आदि ऋषियों के साथ कर्मद के उस आश्रम का दर्शन किया, जो सरस्वती के द्वारा चतुर्दिशालिङ्गित था।[1] **भागवत-पुराण** में सरस्वती के किनारे स्थित अनेक पवित्र स्थानों तथा तीर्थों के प्रसङ्ग आते हैं, जो उसकी पवित्रता की अभिव्यक्ति करते हैं। एक प्रसंग के अनुसार इसी सरस्वती के किनारे देवों एवं असुरों के बीच एक घमासान युद्ध हुआ था, जबकि विष्णु ने दिति की सन्तान का समूल नाश कर दिया, अत एव दिति सरस्वती तीरस्थ 'स्यमन्तपञ्चक' नामक स्थान पर जाकर अपने पति की आराधना करते हुए दीर्घकालीन तपस्या की।[2] **मत्स्य-पुराण** के अध्याय २२ में 'श्राद्ध' के निमित अनेक तीर्थों का वर्णन मिलता है, जिनमें पितृतीर्थ, नीलकुण्ड, रुद्रसरोवर, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सरस्वती आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।[3] देवमाता के लिए सरस्वती की पवित्रता अपने किनारे 'पारावार' पर बताई गई है।[4] पुराणों का कथन है कि भगवान् त्रिपुरारि ने अपने रथ में गङ्गा, सिन्धु, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका तथा सरयू को बाँस-रूप से प्रयुक्त किया था।[5] यहाँ सम्भवतः नदियों की दैवी साहाय्य की ओर सङ्केत जान पड़ता है।

३. सरस्वती के कतिपय पौराणिक विशेषण

वेदों की भाँति पुराणों ने सरस्वती को विविध उपाधियों से अलङ्कृत किया है। यदि यों कहा जाय कि पुराणों ने वेदों से बहुत सी सामग्री उधार ली हैं, तो अनुचित नहीं होगा। यह बात '**पुराणागत वेदविषयक सामग्रियों**' के स्वतन्त्र अनुसंधान-विषयक सामग्रियों से प्रामाणिक रूप से सिद्ध हो चुकी है। अस्तु, वैदिक उपाधियों की भाँति पौराणिक उपाधियाँ भी सारगर्भित एवं साभिप्राय हैं। प्रकृत में सरस्वती की कतिपय नदीभूत पौराणिक उपाधियों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

पुराणों में नदियों का सामान्य रूप से 'शिवा,' 'पुण्या', 'शिवजला' आदि नामों के आह्वाहन किया गया है। यह सम्बोधन उनके गुण-विशेष का बोधक है। गुण-विशेष का मुख्य अभिप्राय उनके परोपकार एवं दया-भाव से है।[6] नदियों का बहना एवं

---

१. **वही**, ३।३४।९

२. **मत्स्यपुराण**, ७।२-३

३. **वही**, २२।२२-२३

४. **वही**, १३।४४

५. **वही**, १३३।२३-२४

६. तु० डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, **इतिहास पुराण का अनुशीलन** (वाराणसी, १९६३), पृ० २१९

पृथिवी-सिञ्चन परोपकार के लिए होता है। पृथिवी के सिञ्चन द्वारा वे मानव-समृद्धि का वर्धन करती हैं। माँ का अपने बच्चों की भाँति वे मानव-जाति का निर्विशेष पालन-पोषण करती हैं। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उन्हें 'जगन्माता' (**विश्वस्य मातरः**) कहा गया है।[1] ये सम्बोधन प्रायः सब नदियों को लक्ष्य करके कहे गये हैं। सरस्वती के प्रति कथन-विशेष निम्नलिखित हैं।

पुराणों में नदियों का विभाजन प्रवाह के दृष्टिकोण से दो रूपों में किया गया है—एक जो केवल वर्षा-काल में प्रवाहित होने वाली हैं तथा दूसरी जो सततप्रवाहिनी हैं।[2] सरस्वती दूसरी कोटि में आती है। **वामनपुराण** का कथन है कि केवल सरस्वती ही '**सततप्रवाहिनी**' है।[3] इसी गति-विशेष के कारण सम्भवतः उसे '**प्रवाहसंयुक्ता**'[4], '**वेगयुक्ता**',[5] '**स्रोतस्येव**[6]' जैसी पौराणिक उपाधियों से विभूषित किया गया है।

ऋग्वैदिक विशेषण 'नदीतमा' से[7] यह ज्ञात होता है कि सरस्वती तत्कालिक 'सर्वश्रेष्ठ' नदी थी। पुराणों ने इस नदी की वैदिक मर्यादा की रक्षा की है। यहाँ बार-म्बार उसे '**महानदी**'[8] से सम्बोधित किया गया है। महानदियों की कुछ अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं, जो तदेतर (छोटी) नदियों में नहीं होती हैं। छोटी नदियाँ या तो बड़ी नदियों से निकलती हैं अथवा सीधे पर्वतों से उद्भूत होती हैं। बड़ी नदियों से निकलने पर वे उनकी सहायक नदियाँ कहलाती हैं, अन्यथा—रूप से पर्वतों से निकल कर बड़ी नदियों में विलीन हो जाती हैं। दोनों ही दशाओं में उनका निजी अस्तित्व अल्पकालिक अथवा अल्पमार्गयावत् होता है, परन्तु बड़ी नदियों की दशा भिन्न होती है। वे पर्वतों से निकल कर अन्ततोगत्वा समुद्र में जा मिलती हैं, अत एव 'समुद्रगा'[9] जैसी उनकी उपाधि युक्तियुक्त ही है।

अन्यत्र कहा जा चुका है कि सरस्वती सर्वप्रथम हिमालय से निकलकर राजस्थान के समुद्र में गिरा करती थी, परन्तु भू-परिवर्तन के कारण उसका मार्ग बदल गया। परिवर्तित स्थिति में राजस्थान के समुद्र के बजाय अरब सागर में गिरने लगी। पुराणों में एतद्विषयक बड़ा सुन्दर सङ्केत मिलता है। सरस्वती की इस दशा-विशेष

---

१. पृ०, २१६
२. **वही**, पृ० २२३, "**वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वती**"
३. **वामनपुराण**, ३४।८
४. **वही**, ३३।१
५. **वही**, ३७।२२
६. **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २।७।३
७. **ऋग्वेद**, २।४१।१६
८. **वामनपुराण**, ३७।३१, ४०।८; **भागवतपुराण**, ५।१९।१८
९. डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २३२

का परिज्ञान दो पौराणिक विशेषण—'प्राची'[1] तथा 'पश्चिमाभिमुखी'[2] द्वारा किया गया है। सरस्वती का छुप जाना(गुप्ता) सर्वज्ञात है, परन्तु इसका 'विनशन' आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। उसने अपने जीवनान्त में अनेक करवटें ली, जिससे दिशा-परिवर्तन हुआ। अन्तिम-काल में उसकी दशा ऐसी हो गई थी कि वह कभी दिखाई देती थी, तो कभी छुप जाती थी। इसका भी सङ्केत पुराणों में 'दृश्यादृश्यगतिः'[3] द्वारा किया गया है। कुरुक्षेत्र से होकर बहने के कारण वह 'कुरुक्षेत्र प्रदायिनी'[4] कहलाई ; चूंकि सरस्वती सदैव शुभ-जल का वहन किया करती थी, अत एव उसे कतिपय साभिप्राय पवित्रता-सूचक पौराणिक उपाधियों—'पुण्यदा'[5], 'पुण्यजननी', 'पुण्यतीर्थस्वरूपिणी', 'पुण्यवद्भिर्निषेव्या','स्थितिः पुण्यवताम्',[7] 'तपस्विनां तपोरूपा', 'तपस्याकाररूपिणी,' 'ज्वलदग्निस्वरूपिणो,[8] 'तीर्थरूपातिपावनी',[9] 'शुभा',[10] 'पुण्या',[11] 'पुण्यजननी',[12] 'पापनिर्मोका',[13] 'सर्वपापप्रणाशिनी',[14] 'अतिपुण्या',[15] 'पुण्यतोया',[16] इत्यादि द्वारा अभिहित किया गया है।

आर्य एवं अनार्य दोनों—गङ्गा सिन्धु एवं सरस्वतो के क्षेत्र में निवास करते थे। उन्हें इन नदियों से अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। वे बिना किसी पारस्परिक भेद-भाव के इन नदियों का जल ग्रहण किया करते थे।[17] यहाँ अभेद-भाव से तात्पर्य यह निकाला जा सकता है कि इन दोनों जातियों को इन नदियों ने एक

---

१. पद्मपुराण, ५।१८।२१७, २८।१२३; भावतपुराण, १०।७८।१९
२. स्कन्दपुराण, ७।३५।२६
३. वामनपुराण, २३।२; तु० इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग २७, नं०३, पृ० २१६
४. वामनपुराण, ३२।१
५. वही, ३२।२४
६. ब्रह्मवैवर्तपुराण, २।६।२,१२
७. वही, २।६।२
८. वही, २।६।३
९. वही, २।७।४
१०. वामनपुराण, ३२।२
११. वही, ३२।२४,३४।६
१२. पद्मपुराण, ५।२७।११९
१३. वही, ५।२७।११९
१४. स्कन्दपुरा , ७।३४।३१
१५. वामनपुराण, ४२।९
१६. वही, ३७।२९,३८
१७. मत्स्यपुराण, ११४।२०

ऐसा शान्तिपूर्ण वातावरण प्रस्तुत किया था, जिससे वे आपसी वैमनस्य को भुलाकर मित्र-भाव से रहा करते थे। सामूहिक रूप से '**सारिद्वराः**'[1] की उपाधि सरस्वती, देविका एवं सरजू को दी गई है। इसके अतिरिक्त सरस्वती को '**ब्रह्मनदी**'[2] कहा गया है। इसी '**ब्रह्मनदी**' सरस्वती में परशुराम ने अपना 'अवभृत स्नान'[3] किया था। 'ब्रह्मनदी' विशेषण द्वारा ज्ञात होता है कि सरस्वती का ब्रह्मा के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था तथा इस सम्बन्ध के आधार पर ब्रह्मा के सरस्वती के प्रति स्नेहाधिक्य की कल्पना की जा सकती है।

संक्षेप में यहाँ सरस्वती के कतिपय पौराणिक उपाधियों का विवेचन किया गया है। **वाणी, वाग्देवी, देवी, विद्या-देवी, ज्ञानाधिष्ठात्री, वस्तुत्वदेवी** इत्यादि के रूप में भी उसे अनेक उपाधियाँ मिली हैं।[4]

---

१. **वही**, १३३।२४

२. **भागवतपुराण**, ९।१६।२३

३. मोनियर विलियम्स ने '**अवभृत**' का अर्थ इस प्रकार किया है : "Carrying off, removing; purification by bathing of the sacrificer and the sacrificial vessels after a sacrifice..." इस प्रकार 'अवभृत स्नान' का अर्थ हुआ "bathing or ablution after a sacrificial ceremoney."—**ए संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी** (द क्लैरेण्डन प्रेस, आक्सफोर्ड, १८७२), पृ० ९२

४. ब्रह्मयोनि (**मार्कण्डेयपुराण**, २३।३०), जगद्धात्री (**वही**), ब्रह्मवासिनी (**मत्स्यपुराण**, ६६।११), शब्दवासिनी (**पद्मपुराण**, ५।२२।१८६), श्रुतिलक्षणा (**स्कन्दपुराण**, ७।३३।२२), ब्रह्माणी, ब्रह्मसदृशी (**मत्स्यपुराण**, २६१।२४), सर्वजिह्वा (**मार्कण्डेयपुराण**), २३।५७, विष्णोर्जिह्वा (**वही**, २३।४८), रसना (**स्कन्दपुराण**, ६।४६।२९), परमेश्वरी (**वही**, ६।४६।३९), ब्रह्मवादिनी (**मत्स्यपुराण**, ४।२४), वागीश्वरी (**ब्रह्माण्डपुराण**, ४।३९।७४), भाषा-अक्षरा, स्वरा, गिरा, भारती (**स्कन्दपुराण**, ४।४६।२६६), वाग्देवता (**ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २।४।७३), वाग्वादिनी (**वही**, २।४।७५), विद्याधिष्ठात्री (**वही**, २।४।७५), विद्यास्वरूपा (**वही**, २।४।७८), सर्ववणात्मिका(**वही**, २।४।७९), सर्वकण्ठवासिनी (**वही**, २।४।८०), जिह्वाग्रवासिनी (**वही**), बुधजननी (**वही**, २।४।८१), कविजिह्वाग्रवासिनी (**वही**, २।४।८३), सदम्बिका (**वही**, २।४।८३), गद्यपद्यवासिनी (**वही**), सर्वशास्त्रवासिनी (**वही**, २।४।८४), पुस्तकवासिनी (**वही**, २।४।८५), ग्रन्थबीजरूपा (**वही**), ब्रह्मस्वरूपा (**वही**, २।५।१०), ज्ञानाधिदेवी (**वही**, २।५।११) इत्यादि।

सरस्वती-नदी के कतिपय पौराणिक विशेषण

प्रारम्भ से ही सरस्वती के नदी एवं देवी—दो रूप पाये जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सम्पूर्ण साहित्य में उसके विशेषणों का बाहुल्य देवी-रूप में है, न कि नदी-रूप में[1]। अस्तु, ये उपाधियाँ सारगर्भित एवं साभिप्राय हैं। प्रकृत में सरस्वती के केवल नदीभूत विशेषणों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

---

१. उदाहरण के रूप में हम यहाँ **ऋग्वेद**, **यजुर्वेद**, **ब्राह्मण**, एवं **पुराणों** को ले रहे हैं। ऋग्वैदिक उसकी कुछ उपाधियाँ हैं : वाजिनीवती (१.३.१०; २.४१.१४; ६.६१.३,४; ७.९६.३); पावका (१.३.१०); घृताची (५.४३.११); पारावतघ्नी (६.६१.२); चित्रायुः (६.४९.७); हिरण्यवर्तनिः (६.६१.७); असुर्या (७.९६.१); धरुणमायसी पूः (७.९५.१); अकवारी (७.९६.७); अम्बितमा (२.४१.१६); सिन्धुमाता (७.३६.६); माता (१०.६५.९); सप्तस्वसा (६.६१.१०); सप्तधातुः (६.६१.१२); सप्तथी (७.३६.६); त्रिषधस्था (६.६१.१२); स्वसृरन्या ऋतावरी (२.४१.१८; ६.६१.९); वीरपत्नी (६.४९.७); वृष्णः पत्नी (५.४२.१२); मरुत्वती (२.३०.८); पावीरवी (६.४९.७; १०.६५.१३); मरुत्सखा (७.९६.२); सख्या (६.६१.१४), इत्यादि; कतिपय ऋग्वैदिक विशेषणों के विशेष ज्ञान के लिए तु० मुहम्मद इसराइल खाँ, 'सरस्वती के कतिपय ऋग्वैदिक विशेषणों की विवेचना' **नागरी प्रचारिणी पत्रिका—श्रद्धाञ्जलि अङ्क**, वर्ष ७२ (वाराणसी, सं० २०२४), पृ० ४६९-४७९; इसी प्रकार यजुर्वेद में सरस्वती को यशोभगिनी (२.२०); हविष्मती (२०.७४); सुदुघा (२०.७५); जागृवि (२१.३६) इत्यादि; एवं ब्राह्मणों में प्रमुख रूप से वैशम्भल्या (तैत्तिरीयब्राह्मण, २.५.८.६); सत्यवाक् (वही, २.५.४.६); सुमृडीका (तैत्तिरीय-आरण्यक, १.१.३, २१.३, ३१.६; ४.४२.१) इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है, पौराणिक युग में उसका व्यक्तित्व पूर्णरूप में निखर चुका है। वह एकमुखी न होकर बहुमुखी हो गया है, अत एव उसके भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व से सम्बद्ध विभिन्न उपाधियाँ उसी क्रम से पायी जाती हैं। तु० आनन्दस्वरूप गुप्त, कन्शेप्ट आफ सरस्वती इन दि पुराणाज **हाफ-इयरली बुलेटिन ऑफ दि पुराण डिपार्टमेण्ट, भाग** ४, नं० १, आल-इण्डिया काशिराज ट्रस्ट, रामनगर, वाराणसी, १९६२), पृ० ६६

नदियों को सामान्य रूप से 'शिवा', 'पुण्या', 'शिवजला', इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है। ये उपाधियाँ सामान्य रूप से उनके परोपकार एवं दया-

---

"(i) Attributes, relating to Specceh : वाग्देवी, वाग्देवता, वाग्वादिनी, वर्णाधिदेवी, सर्ववर्णात्मिका, सर्वकण्ठवासिनी, जिह्वाग्रवासिनी, कविजिह्वाग्रवासिनी, गद्य-पद्यवासिनी, (BvP., II.4.5) शब्दवासिनी, (MP., 66.11b, V. 1.); वागीशा (BrP., 101.11); महावाणी (Pradh R.), etc.

(ii) Attributes relating to mental faculties and functions : स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी, कल्पनाशक्ति, प्रतिभा, विचारकारिणी—(Bv.P., II.4.5); धृति, मेधा, भक्ति, तुष्टि, गति, प्रीति, लज्जा, स्मृति, दक्षा, क्षमा—(SkP.,VI. 46.25-27), etc.

(iii) Attributes relating to knowledge and learning : विद्या, महाविद्या, त्रयी, वेदगर्भा—(Pradh R); त्रयीविद्या (PdP., V. 27-118); वेदारणि (VamP., 32.16); श्रुति, कला—(SkP.,VI.46); विद्याधिदेवता, सर्वविद्याधिदेवी, विद्यास्वरूपा, सर्वविद्यास्वरूपा, ज्ञानाधिदेवी, बुधजननी, सर्वशास्त्रवासिनी, सर्वशास्त्राधिदेवता, पुस्तकवासिनी, ग्रंथबीजरूपा, ग्रंथकारिणी, व्याख्यास्वरूपा, व्याख्याधिष्टातृदेवता, भ्रमसिद्धान्तरूपा, विषयज्ञानरूपा, सर्वसङ्गीतसंधानतालकारणरूपिणी, वीणापुस्तकधारिणी—(BvP., 11.1-7) etc.

(iv) Attributes relating to her cosmic aspects : शतरूपा (MP); विश्वरूपा (VP); सर्वलोकानां माता (Vam P., 32.6); जगद्धात्री (MarP., 23.30); जगन्माता, जगदम्बिका, सदम्बिका, शक्तिरूपिणी (BvP., II.4.5); सर्वभूतनिवासिनी, क्षिति, कृषि, वृष्टि—(SkP., VI. 46); संध्या, रात्रि, प्रभा, भूति–(PdP., V.28.1); सिनीवाली, कुहू, राका—(SkP., V. 46.27); प्रकृति, गौ—(VP., 1.23,50); etc.

(v) Attributes relating to her divine aspects : देवी, सुरेश्वरी, ब्रह्मस्वरूपा, ज्योतिरूपा, सनातनी, अच्युता (BvP., II.1.7); महेश्वरी (VP); ब्रह्मयोनि (MarP., 23.30); ब्रह्मवासिनी (MP., 66-11b); देवमाता (SkP., VI., 45. 72; VII. 34. 36; 35. 103); लक्ष्मी, गौरी, शिवा, ब्रह्माणी, दाक्षायणी, देवेशी, स्वधा, स्वाहा, गङ्गा, अदिति, सावित्री, गायत्री, विनता, कद्रू, रोहिणी, सिनीवाली, कुहू, राका—(SkP., VI. 46); etc.

(vi) Other attributes : कीर्ति, निद्रा, क्षुधा, पुष्टि, वपुः, प्रीति, सत्य, धर्म, बला, नाडी—(SkP., VI. 46); आर्या, कामधेनु—(Pradh R); etc."

भाव को व्यक्त करती हैं[१]। उनका बहना एवं पृथिवी का सिंचन परोपकार-हेतु ही होता है। अपने इस कार्य-द्वारा वे मानव की समृद्धि का वर्धन करती हैं। वे मानव-जाति का पालन-पोषण उसी प्रकार करती हैं, जैसे माँ अपने बच्चों का किया करती है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उनको जगन्माता (**विश्वस्य मातरः**) कहा गया है[२]। सामान्यरूप से यह सभी नदियों के विषय में ज्ञातव्य है। सरस्वती के विषय में विशेष कथन निम्न है।

प्रवाह के दृष्टिकोण से पुराणों में दो प्रकार की नदियों के वर्णन मिलते हैं। एक वे जो केवल वर्षा-काल में प्रवाहित होने वाली हैं तथा दूसरी वे जो सततप्रवहमान रहती हैं।[३] सरस्वती दूसरी कोटि में आती है। **वामनपुराण** का कथन है कि केवल सरस्वती ही सततप्रवाहिनी नदी है। अन्य नदियाँ केवल वर्षा-काल में बहती हैं, परन्तु सरस्वती कालातिशायिनी है "**वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम्।**"[४] सरस्वती की इसी गति विशेष को ध्यान में रखकर सम्भवतः पुराणों ने उसे '**प्रवाहसंयुक्ता**',[५] '**वेगयुक्ता**',[६] '**स्रोतस्येव**'[७] इत्यादि गत्यनुरूप पौराणिक उपाधियों से अभिहित किया गया है।

सरस्वती के ऋग्वैदिक विशेषण '**नदीतमा**'[८] द्वारा यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वह निःसंदेह रूप से श्रेष्टतम ऋग्वैदिक नदी थी। पुराणों ने भी सरस्वती की इस वैदिक मर्यादा की रक्षा की है। यहाँ उसे '**महानदी**'[९] कहा गया है। महानदियों की कुछ अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं, जिनका छोटी नदियों में अभाव पाया जाता है। छोटी नदियाँ या तो बड़ी नदियों से निकलती हैं अथवा पर्वतों से। बड़ी नदियों से निकलने पर उनकी शाखा नदियाँ कहलाती हैं। विपरीतावस्था में पर्वतों से निकल कर बड़ी नदियों में मिल जाती हैं। इन दोनों दशाओं में उनका जीवन अल्पकालिक अथवा अल्पमार्गयावत् होता है, परन्तु बड़ी नदियों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे पर्वतों से निकलकर अन्ततोगत्वा समुद्र में जा मिलती हैं, अत एव उनका सम्बोधन '**समुद्रगा**'[१०] उचित ही है। ऋग्वैदिक युग में सरस्वती इसी प्रकार की नदी

---

१. तु० डॉ० रामशङ्कर भट्टाचार्य, **इतिहास-पुराणा का अनुशीलन** (वाराणसी, १९६३), पृ० २१९
२. **वही**, पृ० २१९
३. **वही**, पृ० २२३
४. **वामनपुराण**, ३४.८
५. **वही**, ३३.१
६. **वही**, ३७.२२
७. **ब्रह्मवै०** **पु०** २.७.३
८. **ऋग्वेद**, २.४१.१६ '**अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।**'
९. **वामनपुराण**, ३७.३१; ४०.८; **भागवतपुराण** ५.१९.१८
१०. डॉ० रामशङ्कर भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० २२३

थी। वह पर्वत से निकलकर अप्रतिहतरूप से समुद्र में गिरा करती थी[1]। उसके उद्गमभूत पर्वत का नाम हिमालय है[2]। स्थान-विशेष का नाम प्लक्ष-प्रास्रवण[3] है। उसका गन्तव्य स्थल 'राजपूताने का समुद्र' था[4]। सरस्वती सर्वप्रथम पर्वत से निकलकर इसी सागर में गिरा करती थी, परन्तु कालान्तर में जब भू परिवर्तन हुआ, उस समय सरस्वती की दिशा भी बदल गई। पृथिवी की उथल-पुथल के कारण राजस्थान का समुद्र भर आया, अत एव उसमें गिरने वाली नदियों का प्रवाह **भी** स्वभावतः भिन्न दिशाभिमुख हो गया। अब सरस्वती पश्चिमी समुद्र अर्थात् अरब सागर में गिरने लगी। पुराणों में सरस्वती को **'प्राची'**[5] एवं **'पश्चिमाभिमुखी'**[6] कहा गया है। सरस्वती के ये पौराणिक विशेषण सम्भवतः उसकी इसी दशा का बोधन करते हैं। इसी **'प्राची'** एवं **'पश्चिमाभिमुखी'** सरस्वती को 'फार्मर' एवं 'लेटर' कहा जा सकता है, जो एक हैं।[7]

---

१. **ऋग्वेद**, ७.९५.२, **"एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।"**

२. एन० एन० गोडबोले, **ऋग्वैदिक सरस्वती** (राजस्थान सरकार प्रकाशन, १९६३), पृ० १७

३. डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी, **स्टडीज इन स्कन्दपुराण**, भाग १ (लखनऊ, १९६६), पृ० १५३; तु० **स्कन्दपुराण**, ७.३३.४०-४१

"सती विसृज्य तां देवीं नदीभूत्वा सरस्वती।
हिमवन्तं गिरिं प्राप्य प्लक्षात् तत्र विनिर्गता॥
अवतीर्णा धरापृष्ठ..........................।"

४. **ऋग्वेद** में दो समुद्र---पूर्वी एवं पश्चिमी (१०.१३६.५) का वर्णन मिलता है। मंत्र में पूर्वः से अभिप्राय पूर्वी समुद्र एवं 'परः' से तात्पर्य पश्चिमी समुद्र है। गङ्गा एवं यमुना हिमालय से निकलकर पूर्वी समुद्र में गिरा करती थीं तथा सरस्वती एवं दृषद्वती नदियाँ पश्चिमी समुद्र अर्थात् राजपूताना सागर में गिरती थीं–तु० एस० सी० दास, **ऋग्वैदिक इण्डिया** (कलकत्ता, १९२७), पृ० १०; दो समुद्रों से भिन्न **ऋग्वेद** में चार समुद्रों का **भी** वर्णन मिलता है (९.३३.६; १०.४७.२)। ये समुद्र क्रमशः (१) पूर्वी समुद्र, (२) दक्षिणी समुद्र (राजपूताना सागर), (३) पश्चिमी समुद्र (अरब सागर) और (४) उत्तरी चीन का समुद्र हैं। सरस्वती सर्वप्रथम राजपूताना सागर में गिरती थी, परन्तु बाद में उसकी दिशा बदल गई।

५. **पद्मपुराण**, ५.१८.२१७, २८.१२३; **भागवतपुराण**, १०.७८.१९

६. **स्कन्दपुराण**, ७.३५.२६

७. ए० ए० मैक्डानेल एण्ड ए० बी० कीथ, **वैदिक इन्डैक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स**, भाग २ (मोतीलाल बनारसीदास; दिल्ली, १९५८), पृ० ४३६; "......"But there are strong reasons to accept the identification of the later and the earlier Sarasvati throughout."

सरस्वती का एक अन्य पौराणिक विशेषण उसकी दशा—विशेष का बड़ा सुन्दर परिचय कराता है। सरस्वती के विषय में कहा गया है कि वह जिला पटियाला में बहुत पहले विनष्ट हो गई। उसके विनष्ट होने का स्थान 'विनशन' नाम से विख्यात है[1]। लुप्त होने के पूर्व इसकी गति में 'स्खलन' एवं 'विकृति' आ चुकी थी। गति स्थान-स्थान पर अवरुद्ध हो गई थी तथा कई स्थानों पर गहरे जल-कुण्ड बन चुके थे। **'सरस्वती तु पञ्चधा सो देशोऽभवत् सरित्'**[2] में **'पञ्चधा'** सम्भवतः सरस्वती की इसी दशा की ओर सङ्केत करता है।[3] सरस्वती की एतत्सम्बन्धी गति का पुराणों में बहुत सुन्दर सङ्केत मिलता है। यहाँ उसे **'दृश्यादृश्यगतिः'** कहा गया है। जब सरस्वती मरणासन्नावस्था में दिखाई देती थी, तब **'दृश्यगति'**[4] थी, और जब छुप जाती थी, तब **'अदृश्यगति'**। चूँकि वह कुरुक्षेत्र से होकर बहती थी, अत एव वह **'कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी'**[5] कहलाती थी। सरस्वती सदैव शुभ-जल का वहन किया करती थी[6], अत एव उसे सायुज्य पौराणिक उपाधियों—यथा **'पुण्दा'**,[7] **'पुण्यजननी, पुण्यतीर्थस्वरूपिणी, पुण्यवद्भिर्निषेव्या, स्थितिः पुण्यवताम्'**[8], **'तपस्विनां तपोरूपा, तपस्याकाररूपिणी, ज्वलदग्निस्वरूपिणी'**[9], **'तीर्थरूपातिपावनी'**[10], **'शुभा'**[11], **'पुण्या,'**[12] **'पुण्यजला'**[13], **'पापनिर्मोका'**[14], **'सर्वपापप्रणाशिनी'**[15], **'अतिपुण्या'**[16], **'पुण्यतोया'**[17], से

---

१. मैक्स म्यूलर, सेकरेड **बुक्स** आफ **दि इस्ट**, भाग १४ (दिल्ली, १९६५), पृ० २, फूट नोट ८ २. **यजुर्वेद**, ३४.११

३. रे चौधरी, एच०सी० 'दि सरस्वती', **साइंस एन्ड कल्चर**, ८ (१२), (१९४२), पृ० ४७२

४. **वामनपुराण**, **३१.२**; तु० डा० दिनेशचन्द्र सरकार, 'टेक्ट्स आफ दि पुराणिक लिस्ट ऑफ रीवर्स', **दि इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली**, भाग २७, न० ३, पृ० २१६; "Saraswati rises in the Sirmur hills of the Siwalik ranges in the Himalayas and emerges into the plains at Ad-Badari in the Ambala District, Punjab. It disappears once at Chalur but reappears at Bhawanipur; then it disappears at Balchapper, but again appears at Bara-Khera"

५. **वामनपुराण**, ३२.१ ६. **वही**, ३२.२४

७. **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २.६.२, १२ ८. **वही**, २.६.२

९. **वही**, २.६.३ १०. **वही**, २.७.४

११. **वामनपुराण**, ३२.२ १२. **वही**, ३२.२४; ३४.६

१३. **पद्मपुराण**, ५.२७.११९ १४. **वही**, ५.२७.११९

१५. **स्कन्दपुराण**, ७.३४.३१ १६. **वामनपुराण**, ४२.९

१७. **वही**, ३७.२९, ३८

युक्तमेव अलङ्कृत किया गया है।

जैसा कि पहले बताया गया है कि नदियों से सदैव कल्याण की आशा रही है। वे सबके लिए समान रूप से उदार रही हैं। अन्य नदियों की अपेक्षा गङ्गा, सिन्धु एवं सरस्वती की उदारता सर्वज्ञात है। इसको एक पौराणिक दृष्टान्त से भली-भाँति आँका जा सकता है। कहा जाता है कि आर्य एवं अनार्य दोनों गङ्गा, सिन्धु एवं सरस्वती के पड़ौस में रहा करते थे तथा वे विना किसी भेद-भाव के इन नदियों का जल ग्रहण करते थे[1]। यह स्पष्ट है कि दो भिन्न मतावलम्बियों की स्वतन्त्र इयत्ता किसी सिद्धान्त पर आधारित होती है, अत एव पारस्परिक वैमनस्य अथवा मतमतान्तर का होना स्वाभाविक सी बात है, परन्तु उपर्युक्त दृष्टान्त में इस सिद्धान्त का खंडन दीख पड़ता है। इन नदियों ने आर्य एवं अनार्य दोनों को ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया था कि वे पारस्परिक भेद-भाव को भूलकर मित्र-भाव से साथ-साथ रहा करते थे। सामूहिक रूप से '**सरिद्वराः**' की उपाधि सरस्वती, देविका एवं सरयू को दी गई है[2]। यह विशेषण तुलनात्मक भाव को अभिव्यक्त करता है, अर्थात् इस विशेषण द्वारा यह ज्ञात होता है कि अन्य नदियों की तुलना में सरस्वती, देविका एवं सरयू श्रेष्ठ हैं। व्यक्तिगतरूप से '**सरिद्वरा**' प्रत्येक नदी के लिए लागू होता है। सरस्वती का एक विशेषण '**ब्रह्मनदी**'[3] है। ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उसे यह उपाधि मिली है। यही वह ब्रह्मनदी सरस्वती है, जिसमें परशुराम ने अपना '**अवभृथ स्नान**' किया था।

उपर्युक्त में सरस्वती के केवल प्रमुख विशेषणों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। देवी-रूप में उसके अनेक विशेषण हैं, जिनका फूटनोट में संकेत कर दिया गया है। उन पर अन्यत्र गहराई के साथ स्वतन्त्र विचार किया जा सकता है तथा उचित सारांश निकाला जा सकता है।

---

१. **मत्स्यपुराण**, ११४.२०

२. **वही**, १३३.२४

३. **भागवतपुराण**, ६.१६.२३

—८—

पुराणों में सरस्वती की प्रतिमा

यदि यों कहा जाय कि संस्कृत-साहित्य में सरस्वती को देवीरूप में प्रतिष्ठा शताब्दियों पश्चात् मिली है, तो अत्युक्ति न होगी। ऋग्वैदिक काल में उसका जो भी पार्थिव रूप उपलब्ध है, वह है नदी।[1] ब्राह्मण-कालीन उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता वाणी से तादात्म्य है : '**वाग्वै सरस्वती**',[2] परन्तु पौराणिक काल आते-आते उसकी मूर्तिवत्ता में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। यही कारण है कि पुराणों ने उसके प्रतिमा-निर्माण की अनेक विधियाँ निर्धारित कर रखी हैं। उनका अवलोकन ही प्रस्तुत लेख का विषय है।

१. सरस्वती की मूर्तिनिर्माण-विधि :

पुराणों में न केवल सरस्वती का, अपितु अनेक देवी-देवों के प्रतिमाविद्या-सम्बन्धी विधान यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। इस दृष्टि से **अग्नि, मत्स्य** तथा **विष्णुधर्मोत्तर पुराण** प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। **अग्निपुराण** के ४९-५० अध्याय विविध देवियों एवं देवों की मूर्ति-विधियों का ही प्रतिपादन करते हैं। ४९वें अध्याय में ब्रह्मा की मूर्ति-विधि प्रतिपादित करते समय बताया गया है कि सरस्वती की मूर्ति उनके बायें तथा सावित्री की दक्षिण भाग में स्थापित होनी चाहिए—

'आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे'।[3]

---

१. तुलनीय **ऋग्वेद**, १.३.१२; २.४१.१६, ३.२३.४, ५.४२.१२, ४३.११; ६.५२.६; ७.३६.६, ९६.१-२; ८.२१.१७-१८, ५४.४; १०.१७.७, ४६.९, ७५.५ इत्यादि।

२. **शतपथब्राह्मण**, २.५.४.६; ३.१.४.९,१४; ९.१.७,९; ४.२.५.१४, ६.३.३; ५.२.२.१३-१४, ३.४.३, ५.४.१६; ७.५.१.३१; ९.३.४.१७; १३.१.८.५, १४.२.१.१२।

तैत्तिरीयब्राह्मण, १.३.४.५, ८.५.६; ३.८.११.२

ऐतरेयब्राह्मण, २.२४; ३.१-२, ३७; ६.७

ताण्ड्यमहाब्राह्मण, १६.५.१६

गोपथब्राह्मण, २.१.२०

शाङ्खायनब्राह्मण, ५.२; १२.८; १४.४

३. **अग्निपुराण**, ४९.१५

अग्निपुराण की भाँति **मत्स्यपुराण** के २५८-२६४ अध्याय इसी विधि का प्रतिपादन करते हैं। इस पुराण के अनुसार भी सरस्वती की मूर्ति में ब्रह्मा की मूर्ति का अनुकरण सादृश्य स्पष्ट है। विधान है कि ब्राह्माणी (=ब्रह्मा की पुत्री अथवा स्त्री अर्थात् सरस्वती) ब्रह्मसदृशी होनी चाहिए : **'ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी'**।[1] ब्रह्मा के विषय में बताया गया है कि उन्हें कमण्डलुधारी एवं चतुर्मुखापन्न होना चाहिए। वे हंसाधिरूढ भी हो सकते हैं एवं कमलासीन भी।[2] अतः तदनुरूप सरस्वती की प्रतिमा भी चार मुखों, चार हाथों, हंसाधिरूढा, अक्षमाला एवं कमण्डलुधारिणी होनी चाहिए : **'चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा'**[3]; **'हंसाधिरूढा कर्त्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः'**।[4] इस पुराण के अनुसार भी सरस्वती-मूर्ति का ब्रह्मा-मूर्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध एवं तादात्म्य है। एक स्थल पर यह बात बलपूर्वक कही गई है कि ब्रह्मा की मूर्ति के समीप एक स्थल ऐसा भी होना चाहिए, जो धृतबलि के कार्य आए; चारो वेद समीपस्थ हों; सावित्री बायें भाग में हों तथा सरस्वती दक्षिणस्थ।[5] यहाँ जहाँ तक सावित्री एवं सरस्वती के स्थान-ग्रहण का प्रश्न है, **अग्निपुराण** की **'आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे'**[6] से मेल नहीं खाती; दोनों में विरोध सा लगता है। ऐसा जान पड़ता है कि उपस्थिति की अपेक्षा स्थान-विशेष की निगूढता परिहार्य है।

अग्नि एवं **मत्स्य** पुराणों की भाँति **विष्णुधर्मोत्तर** का तीसरा खण्ड पूर्णतया प्रतिमाविद्या की विशेषता का ही वर्णन करता है। इसके ४४वें अध्याय में ब्रह्मा को कमलासन रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ सावित्री उनकी बायीं गोद को सुशोभित करती हैं।[7] इसकी सबसे बड़ी विशेषता सरस्वती की अनुपस्थिति है, जो अग्निपुराण तथा मत्स्यपुराण में प्रायः सावित्री के साथ पाई जाती हैं।

पुराणों ने मूर्ति की जिन विधियों का प्रतिपादन किया है, उनका देश के विभिन्न मूर्तिकलाओं में प्रयोगात्मक स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। इस कथन की

---

१. **मत्स्यपुराण**, २६१.२४

२. **वही**, २६०.४०

> "**ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः।**
> **हंसारूढः क्वचित्कार्यः क्वचिच्च कमलासनः॥**

३. **वही**, २६१.२४

४. **वही**, २६१.२५

५. **वही**, २६०.४४

> **'आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः।**
> **वामपार्श्वेऽस्य सावित्री दक्षिणे च सरस्वतीम्॥'**

६. **अग्निपुराण**, ४९.१५

७. तुलनीय डॉ० प्रियबाला शाह, **विष्णुधर्मोत्तरपुराण**, तृतीय खण्ड, भाग २, (एम० एस० यूनीवर्सीटी, बड़ौदा, १९६१), पृ० १४०

पुष्टि कतिपय प्रमाणों से की जा सकती है । मथुरा-मूर्तिकला में ब्रह्मा के साथ सरस्वती को जो स्थान मिला हुआ है,[1] उसमें पौराणिक विधियों की आंशिक अनुकृति प्रकट होती है । आंशिक का तात्पर्य यह है कि **विष्णुधर्मोत्तर** में ब्रह्मा के साथ सावित्री चित्रित की गई है[2], जबकि मथुरा-मूर्तिकला में ब्रह्मा के साथ सरस्वती को संयुक्त होने का गौरव प्राप्त हुआ है, परन्तु सिद्धान्त एवं प्रयोग की यह भिन्नता सदैव जड़ पकड़ी रही हो, ऐसी बात नहीं । मूर्तिकला के कुछ अन्य ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं, जिनमें पौराणिक प्रयोग एवं सिद्धांत का संतुलन सहज है तथा जिनकी पुष्टि की जा सकती है । ब्रह्मा की मूर्ति के साथ सरस्वती एवं सावित्री की मूर्ति सिन्ध स्थित **'मीरपुर खास'**[3], प्रारम्भिक चोला, अन्तिम होयसाल[4] में उपलब्ध है ।

राजा अम्बुवीचि के विषय में प्रसिद्ध है कि वह भारती के महान् भक्त थे । अपने स्नेहाधिक्य के प्रकटीकरणार्थ उन्होंने सरस्वती नदी की मृत्तिका से भारती की प्रतिमा निर्मित की ।[5] इसी प्रकार भगवान् शिव के विषय में **वामनपुराण** का कथन है कि उन्होंने स्थाणु-तीर्थ पर सरस्वती की लिङ्गानुकृति मूर्ति स्थापित की ।[6]

२. मुखः

मूर्ति-जगत् में किसी भी देवी एवं देव की प्रतिमा में उनकी मुखाकार-प्रकार की महती महत्ता है । कारण है कि उसके ही माप-तौल पर सम्पूर्ण प्रतिमा का अङ्कन होता है । यही कारण है कि प्रतिमा-जगत् में अनेक प्रकार के मापों या तालों का जन्म पाया जाता है । मानसार के अनुसार सरस्वती एवं सावित्री की प्रतिमा दश-तालानुसार होनी चाहिए : **'सरस्वतीम् च सावित्रीम् च दशतालेन कारयेत्'** ।[7] नवताल, अष्टताल, सप्तताल आदि तालों में दशताल को सर्वोत्तम माना गया है । इस ताल के अनुसार सम्पूर्ण प्रतिमा मुख (मुख की लम्बाई) की दशगुनी होनी चाहिए । पुनः दश-

---

१. तुलनीय बी० सी० भट्टाचार्य, **इंडियन इमेजेज**, पार्ट फर्स्ट (ठेकर स्प्रिक एण्ड को०, कलकत्ता तथा सिमला—), पृ० १३

२. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४०

३. तुलनीय जितेन्द्रनाथ बनर्जी, **दि डेवलप्मेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी** (कलकत्ता यूनीवर्सिटी, १९५६), पृ० ५१८

४. **वही**, पृ० ५१८

५. **स्कन्दपुराण**, ६.६४.१६-१७

६. **वामनपुराण**, ४०.४

"यत्रेष्ठ्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम् ॥"

७. **मानसार ऑन आर्किटेक्चर एन्ड स्कल्पचर**, ५४.१९ (प्रसन्नकुमार आचार्य, लन्दन, १९३३)

ताल को उत्तम, मध्यम एवं अधम तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। सबसे लम्बा दशताल (उत्तम दशताल) सम्पूर्ण प्रतिमा की लम्बाई को १२४ समभागों में विभक्त करता है, मध्यम १२० तथा अधम ११६ भागों में।[1] मुख-निर्मिति कुक्कुटाण्डाकार बताई गई है।[2] **शिल्परत्न** में दशतालों के तीनों भेदों की विशद् व्याख्या की गई है[3] और अङ्गुल की व्याख्या **मानसार शिल्पशास्त्र** में बड़े सुन्दर ढङ्ग से की गई है।[4]

इस प्रकार मुख की जो उपर्युक्त व्याख्या की गई है, उसे मूर्ति-विद्या के क्षेत्र में बड़ी मान्यता मिली है, लेकिन जहाँ तक पुराणों का प्रश्न है, वे इतने विस्तारपूर्वक किसी देवी एवं देव के मुख, तदनुसार, उनकी प्रतिमा-निर्माण की व्याख्या नहीं करते। पर इतना अवश्य है कि उन्होंने देवताओं और देवियों के सिरों की संख्या निश्चित करने का श्लाघनीय कार्य किया है। इतना होते हुए भी उनमें एतत्संख्या-विषयक मतैक्य नहीं है। सरस्वती के साथ भी यही प्रश्न है। वे उन्हें अनेक रूपों से चित्रित करते हैं। अपने जनक ब्रह्मा की भाँति उन्हें एक से लेकर चार मुखों वाली बताया गया है। कहीं-कहीं उनके पञ्चमुखी होने का भी सङ्केत मिलता है। **मत्स्यपुराण** के अनुसार

---

१. प्रसन्नकुमार आचार्य, इण्डियन आर्किटेक्चर अकार्डिङ्ग टू मानसार-शिल्पशास्त्र (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२७), पृ० ७८, १२३

२. **वही**, पृ० ८४

"The face is taken as the standard of the tala measurement and is generally twelve angulas or about nine inches in length. The face is stated to be of vocal shape (Kukkutanda-samakara, lit, 'shaped like the egg of a hen.')"

३. श्री कुमार, **शिल्परत्न**, ५.१-११४.१/२; ६.१-१०.१/२; ७.१-४२.१/२

४. प्रसन्न कुमार आचार्य, **शिल्पशास्त्र, ए समरी ऑफ दि मानसार,** पी-एच० डी० की उपाधि के लिए लीडेन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत प्रबन्ध), पृ० ३५

"The paramanu or atom is the smallest unit of measurement.

8 paramanu	=	1 rathadhuli (lit. car-dust).
8 rathadhulis	=	1 balagra (lit. hair's end).
8 balagras	=	1 liksha (lit. nail)
8 likshas	=	1 yuka (lit. a lense).
8 yukas	=	1 yava (lit. a barley corn).
8 yavas	=	1 angulas (lit. finger's breadth).

Three kinds of angulas are distinguished by the largest of which is made of 8 yavas, the intermediate of 7 yavas, and the smallest one of 6 yavas......"

ब्रह्माणी (सरस्वती) ब्रह्मा की भाँति चतुर्मुखी (चतुर्वक्त्रा) कही गई है।[१] तद्वत् वायु-पुराण भी उन्हें चतुर्मुखी उद्घोषित करता है।[२] वह एकवक्त्रा हैं, ऐसा **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण** का मत है।[३]

'रूपमण्डन' में सरस्वती के 'महाविद्या' एवं 'सरस्वती'—दो भेद किए गए हैं। उनमें से 'महाविद्या' को एकवक्त्रा बताया गया है।[४] इससे भिन्न ब्रह्मा की भाँति सरस्वती को पाँच मुखों वाली भी बताया गया है। पञ्चमुखी होने पर उनका नाम शारदा है।[५]

बौद्ध धर्म की सरस्वती में पौराणिक सरस्वती की समता एवं विषमता दोनों का समन्वय पाया जाता है। उन्हें मूर्ति-जगत् में लाते हुए बताया गया है कि वह एक मुख वाली भी हो सकती हैं अथवा तीन मुखों वाली भी।[६] वज्र सरस्वती को तीन मुखों वाली बताया गया है : **'वज्रसरस्वतीं त्रिमुखाम्'**।[७]

सरस्वती के मुखों की संख्या के अनुसार उनके विभिन्न लक्षितार्थ निकाले गए हैं। मुख-निश्चिकरण के साथ-साथ उनका पर्यालोचन परमावश्यक है। **ऋग्वेद** में एक स्थान पर सरस्वती को 'सप्तस्वसा'[८] कहा गया है। सायण ने इस विशेषण-पद की व्याख्या गायत्र्यादि सप्त छन्द अथवा गङ्गादि सात नदियाँ की है : **"गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि स्वसारो यस्यास्तादृशी। नदीरूपायास्तु गङ्गाद्याः सप्त नद्यः स्वसारः।"** पुराण में उनके मुख से तद्वत् भाव गृहीत हैं। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** का कथन है कि सरस्वती का मुख सावित्री अथवा गायत्री का प्रतिनिधित्व करता है।[९] तथ्य है कि

---

१. **मत्स्यपुराण**, २६१.२४

२. **वायुपुराण**, २३.५०

"सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयम्भुवः।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता॥"

३. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५४

४. श्री सूत्रधार मण्डन, **रूपमण्डन** (मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सम्वत् २०२१), पृ० ८८

५. एच० कृष्ण शास्त्री, **साउथ इण्डियन इमेजेज ऑफ गाड्स एण्ड गाडेसेस**, (मद्रास गवर्नमेंट प्रेस, १९१६), पृ० १८७

६. विनयतोश भट्टाचार्य, **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी** (फेरिना के० एन० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १९५८), पृ० ३४९

७. **साधनमाला**, १६३ (भा० २, ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९२८)

८. **ऋग्वेद**, ६.६१.१०

"उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा, सरस्वती स्तोम्या भूत्॥"

९. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५४

वेद में गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुपादि सात प्रकार के छन्द प्रयुक्त हैं। इन सभी छन्दों में गायत्री को प्रमुखता दी गई है। ये सम्पूर्ण छन्द संयुक्त अथवा वियुक्त रूप से न केवल छन्द का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, वरन् व्यापक रूप से वेद-भाव को भी ध्वनित करते हैं। अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि सरस्वती का ऋग्वैदिक विशेषण **'सप्तस्वसा'** जहाँ एक ओर उनको वाक् से सम्बद्ध करता है, वहाँ दूसरी ओर पौराणिकसिद्धान्तानुसार उनके मुख का ध्वनितार्थ सावित्री अथवा गायत्री में माना जाय, तो ऐसी अवस्था में यह उनके वाक् सम्बन्ध को ही स्पष्ट करता है। पौराणिक सिद्धान्तानुसार सरस्वत्युत्पत्ति ब्रह्मा से मानी गई है,[1] परन्तु एक पग और आगे बढ़कर उनका यह कहना कि सरस्वती की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है।[2] यह स्पष्ट रूप से सरस्वती-रूपी वागोत्पत्ति का ही प्रतिपादन करना है, क्योंकि वाक् की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से मानी गई है।[3] सामान्य-रूप से इस वाग् द्वारा वागोत्पत्ति का वर्णन किया गया है, परन्तु विशेष-रूप से उसके द्वारा वेदों एवं शास्त्रों की लक्षणोत्पत्यभिव्यक्ति होती है। **मत्स्यपुराण** में एक स्थल पर कहा गया है कि वेदों एवं शास्त्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है,[4] अत एव सरस्वती के मुख की कल्पना वेद से करना निश्चित रूप से उनकी उत्पत्ति तथा ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न वेद-शास्त्र-विषयक सिद्धान्त का दृढीकरण है। जिस प्रकार ब्रह्मा के चारो मुख चारो वेदों के प्रतीक हैं,[5] तद्वत् सरस्वती-मुख भी वेद के प्रतीक हुए, ऐसा मानना सर्वथा निर्दोष एवं युक्तियुक्त है।

पुराणों में यह बात बारम्बार कही गई है कि ब्रह्मा से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुई है। इस कार्य-हेतु उन्हें अपने मस्तिष्क अथवा प्रतिभा द्वारा उत्पत्ति-विषयक आयोजन पूर्व से ही करना पड़ा। यहाँ मस्तिष्क अथवा प्रतिभा वेद-वाचक है, जिसे चतुर्विध प्रकृति से युक्त ब्रह्माण्ड का रूपक माना गया है,[6] अत एव ब्रह्मा-मस्तिष्क

---

१. **मत्स्यपुराण**, १७१.३३; **वायुपुराण**, ९. ७५-७८

२. ब्रह्मवैवर्तपुराण, १.३.५४-५७

आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ॥५४॥

× × ×

वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता।
शुद्धसत्त्वस्वरूपाश्च शान्तरूपा सरस्वती ॥५७॥

३. **भागवतपुराण**, ३. १२. २६

४. **मत्स्यपुराण**, ३.२-४

५. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४०

"The four faces of Brahman represent the four Vedas : the eastern Rgveda, the southern Yajurveda, the western Samaveda and the northern Atharvaveda."

६. वासुदेव शरण अग्रवाल, **मत्स्यपुराण—ए स्टडी** (आल इण्डिया काशिराज ट्रस्ट, रामनगर, वाराणसी, १९६३), पृ० १५, २८

वेद-वाचक ठहरा। 'वेद' शब्द स्वतः सामान्यतया चारो वेदों का बोध कराता है, अत एव चारो वेदों से उनके चारो मुखों के साथ तादात्म्य सर्वथा युक्त है। इसी प्रकार का अर्थ सरस्वती के चारो मुखों से लगाया जाना चाहिए। उनके तीन मुखों की कल्पना प्रमुख तीन वेदों—**ऋग्वेद, यजुर्वेद** एवं **सामवेद** में की गई है, क्योंकि उन्हें त्रयीविद्या[1] कहे जाने का यही कारण प्रतीत होता है। तद्वत् उनके पाँच मुखों की कल्पना पाँच वेदों में की जा सकती है। पाँच वेदों से तात्पर्य—**ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद** एवं **नाट्यवेद** से है। कहा जाता है कि जिस प्रकार ब्रह्मा ने चारो वेदों का निर्माण किया, उसी प्रकार उन्होंने पाँचवाँ **'नाट्यवेद'** बनाया। **'नाट्यवेद'** अन्य वेदों से श्रेष्ठ माना गया हैं, क्योंकि ब्रह्मा ने चारो वेदों का स्मरण करके उनके अङ्गों से इसका निर्माण किया है।[2] चूँकि सम्पूर्ण शास्त्र एवं कलाएँ **नाट्यवेद** में अन्तर्भूत हो जाती हैं;[3] वेद की प्रतीक होने से सरस्वती को इसी कारण सभी कलाओं एवं विज्ञानों का प्रतिनिधित्व करती हुई,[4] उनको **'सर्वसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी'**[5] कहा गया है।

३. सरस्वती के हाथों की संख्या एवं तत्रस्थ वस्तुएँ

पुराणों में सरस्वती के हाथों की संख्या स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न पाई जाती है। उनमें अधिकतर उनके चतुर्हस्ता होने का सङ्केत पाया जाता है, परन्तु कतिपय पौराणिक उपाधियों-यथा **'वीणापुस्तकधारिणी'**[6] से उनके द्विहस्ता होने का

---

१. **पद्मपुराण,** ५. २७.११७-१८

"देवैः कृता सरस्वती स्तुतिः 'त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मतं महत्। संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती' ।११७॥

यश-विद्या महाविद्या च शोभना।

आन्विक्षिकी त्रयीविद्या दण्डनीतिश्च कथ्यते ॥११८॥

विष्णुपुराण, १. ६. ११६-१२१ पूर्वार्द्ध

तुलनीय राम प्रसाद चन्द, **दि इण्डो आर्यन रेसेस, ए स्टडी ऑफ दि ओरिजन ऑफ दि इण्डो आर्यन पीपुल एण्ड इन्स्टीट्यूसन्स** (वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, १९१६), पृ० २२८-३०

२. भरत, **नाट्यशास्त्र,** १. १५-१६

"सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।
नाट्याख्यपञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥

३. **वही,** १.१५

४. जे० डाउसन, **क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी,** (राउटलेज एण्ड केगन पौल लि०, लन्दन, १९६१), पृ०२८४

५. **ब्रह्मवैवर्तपुराण,** २.१.३४ ६. **वही,** २.१.३५; २.५.५

निर्देश होता है। द्विहस्ता होने पर उनके एक हाथ में वीणा तथा दूसरे में पुस्तक सुशोभित है। **मत्स्यपुराण** में सरस्वती की मूर्ति-प्रक्रिया का विधान करते समय बताया गया है कि ब्रह्मा की भाँति उनकी मूर्ति चार हाथों वाली (चतुर्हस्ता) होनी चाहिए।[१] **अग्निपुराण** की भी यही मान्यता है। चारो हाथों में क्रमशः पुस्तक, अक्षमाला, वीणा एवं कमण्डलु होने का विधान है।[२] **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में एतद्विषयक कई प्रसङ्ग आए हैं। एक स्थान पर उनको चार हाथों वाली बताते हुए कहा गया है कि उनके दोनों दाहिने हाथों में क्रमशः पुस्तक एवं अक्षमाला हैं; दोनों बायें हाथ कमण्डलु एवं वीणा से सुशोभित हैं।[३] एक अन्य स्थल पर भी उनके चतुर्हस्ता होने का सङ्केत मिलता है, परन्तु हस्तधारित प्रतीकों (पदार्थों) का क्रम बदला हुआ है। इस परिवर्तितावस्था में उनके दोनों दाहिने हाथों में क्रमशः अक्षमाला एवं त्रिशूल हैं तथा बायें हाथों में पुस्तक एवं कमण्डलु हैं।[४] यहाँ वीणा की अनुपस्थिति दिखाई गई है और त्रिशूल ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। एक अन्य स्थल पर उन्हें चार हाथों वाली बताया गया है। जैसे पूर्व-कथित प्रसङ्ग में त्रिशूल ने वीणा का स्थान ग्रहण कर लिया है, तद्वत् यहाँ वीणा पर **'वैणवी'** की आक्षिप्ति हुई है।[५] डॉ० क्रमरिश ने वैणवी का अर्थ वैष्णवी किया है।[६] वैणवी का अर्थ—बाँस से निर्मित वीण-दण्ड है—ऐसा डॉ० प्रियबाला का मत है।[७]

सरस्वती को जबकि प्रकृति के पाँच रूपों—'दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती एवं सावित्री' में से एक माना गया है,[८] उस अवस्था में भी उनको चतुर्हस्ता बताया गया है। **वायुपुराण** में तद्वत् उनको **'प्रकृतिगौः'** कहा गया है। वहाँ वह चार मुख, चार सींग, चार दाँत, चार नेत्र एवं चार भुजाओं वाली बताई गई हैं।[९] चूँकि वह स्वयं प्रकृति गौ हैं, अत एव उन्हीं के प्रभाव से सभी पशुओं के चार पगों एवं चार स्तनों वाली होने का कारण माना गया है।[१०]

---

१. **मत्स्यपुराण**, २६१. २४
२. **अग्निपुराण**, ५०. १६
३. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२५
४. **वही**, पृ० २२७
५. **वही**, पृ० १५४
६. **वही**, फूट नोट—१, पृ० १५४
७. **वही**, पृ० १५४
८. **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २. १. १ आगे
९. **वायुपुराण**, २३. ४४-४५
१०. **वही**, २३.८८

जैन धर्म की अधिकतर विद्या-देवियाँ चार हाथों वाली मानी गई हैं, लेकिन बौद्ध धर्म में सरस्वती को दो अथवा छः हाथों वाली बताया गया है। द्विहस्ता होने पर उनके चार रूप विभिन्न नामान्तरगत हैं।[१] इसके अतिरिक्त सरस्वती देवी को आठ[२] तथा दश भुजाओं वाली भी बताया गया है,[३] परन्तु पुराणों में एतद्विषयक सिद्धान्तमात्र हैं, ऐसा कहना युक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वहाँ उसका प्रयोगात्मक स्वरूप भी उपलब्ध है। कहा जाता है कि राजा अम्बुवीचि ने सरस्वती की जिस प्रतिमा का निर्माण किया था, वह पौराणिक प्रतिमाविद्या-सिद्धान्त-सङ्गत थी, अर्थात् उसकी चार भुजाएँ थीं और उनमें क्रमशः कमल, अक्षमाला, कमण्डलु एवं पुस्तक सुशोभित थे।[४]

जिस प्रकार सरस्वती के चारो मुख चारो वेदों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वैसा ही भाव उनके चार हाथों से निकाला गया है[५], अर्थात् चारो हाथ चारो वेदों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कमण्डलु शास्त्रों के सार को बोधित करता है।[६] चूँकि वह स्वयं सम्पूर्ण ज्ञान की प्रतिरूप हैं, अत एव वह सारे शास्त्रों की प्रतिनिधि हैं—ऐसा भाव प्रकट होता है। सम्भवतः इसी कारण उनको **'श्रुतिलक्षणा[७]'** की उपाधि से विभूषित किया गया है। हस्तधारित पुस्तक भी इसी भाव को अभिव्यक्त करती है।[८] पुराण में एक स्थल पर उनके हस्तधारित पुस्तक की व्याख्या इस प्रकार की गई है: **'पुस्तकं च तथा वामे सर्वविद्यासमुद्भवम्'**।[९] यह नितान्त सत्य है कि सरस्वती देवी का सम्बन्ध सर्वप्रथम जल से रहा है, क्योंकि आदि काल में वह जलमय (सरित्) थीं और उनके प्रति अन्य विचार-धाराएँ उसी से पुष्पित एवं पल्लवित हुई हैं।[१०] जब उन्हें तन्मात्राओं की उत्पत्ति-स्थल अर्थात् जननी माना जाता है[११], जिनमें (तन्मात्राओं) में जल स्वतः आ जाता है, तो इससे उनका जल-सम्बन्ध स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इन

---

१. विनयतोश भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३४९-५१
२. **वैकृति रहस्य**, १५
३. एच० कृष्ण शास्त्री, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८७; **शारदातन्त्र**, ६.३७
४. **स्कन्दपुराण**, ६.४६. १६-१९
५. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८४
६. **वही**, पृ० १८५
७. **स्कन्दपुराण**, ३३.२२
८. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १८६
९. **स्कन्दपुराण**, ६. ४९. १९
१०. तुलनीय जेम्स हेस्टिङ्गस, **इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रीलीजन एण्ड एथिक्स**, भाग ११ (न्यूयार्क, १९५४), पृ० १९६
एच० एच० विलसन, **विष्णुपुराण, ए सिस्टम ऑफ हिन्दू माइथालोजी एण्ड ट्रेडीशन** (कलकत्ता, १९६१), भूमिका भाग १, पृ० १४-१५
११. वासुदेव शरण अग्रवाल, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ५३

सम्पूर्ण तन्मात्राओं के योग से जगत् की सृष्टि मानी गई है और चूंकि वह स्वयं सम्पूर्ण तन्मात्राओं की जननी हैं, अत एव युक्तमेव उनको जगदुत्पादयित्री कहा गया है।[1] उत्पत्ति में जल की मूलतः आवश्यकता होती है, सम्भवः इसी कारण अपने कमण्डलु में जलधारण द्वारा, जल के साथ अपने प्राचीनतम संसर्ग को व्यक्त करती हैं। इस जल को साधारण जल की अपेक्षा दिव्य माना गया है तथा केवल दिव्यावस्था में ही यह उनके कमण्डलु में रखा हुआ समझना चाहिए।[2]

सरस्वती-हस्त-धारित वीणा की कुछ कम महत्ता नहीं। कहा गया है कि वीणा संसिद्धि अथवा प्रवीणता का प्रतिनिधित्व करती है।[3] साथ-साथ अपने हाथ में वीणा एवं पुस्तक धारण करने से उनका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है। वह प्रमुख रूप से वागधिष्ठात्री देवी हैं, अत एव वाक् प्रतिनियम का प्रतिनिधित्व नितान्त सहज है। यही कारण है कि ब्राह्मणों में उन्हें पुनः पुनः **'वाग्वै सरस्वती'**[4] कहा गया है। वाक् का विभाजन मोटे तौर पर ध्वनि एवं शब्द (पद+वाक्य) में किया जा सकता है तथा पुस्तक का सम्बन्ध वाक् से माना जा सकता है एवं वीणा का सम्बन्ध ध्वनि से। सरस्वती के हाथ में केवल वीणा पाई जाती है, कोई अन्य वाद्य यन्त्र नहीं, इसका कारण **ऐतरेयब्राह्मण** के अनुसार उसकी प्राचीनता कही जा सकती है। सङ्गीत मानसिक एकाग्रता का महान् साधन माना गया है। वीणा यन्त्रों में सर्वोत्कृष्ट वाद्य यन्त्र है, क्योंकि सोम-संगीत उत्पन्न करने में वह महान् सहायक सिद्ध हुआ है।[5] समय सदैव गतिमान् है, अत एव जब सरस्वती-हस्तधारित अक्षमाला को समय का प्रतिनिधित्वकारिणी माना जाता है,[6] तो उससे समय-गति अथवा काल-मापन का बोध होता है।

---

१. तुलनीय **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २.१.१ आगे।
२. तुलनीय **स्कन्दपुराण**, ६.४६.१६
३. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १८६
४. तुलनीय **वही**, फूट नोट २, पृ० १
५. तुलनीय **देवीभागवतपुराण**, ३.३०.२
६. डॉ० प्रियबाला शाह, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १८५

—९—

सरस्वती का वाहन

वेदों में सरस्वती के दो रूप उपलब्ध होते हैं। वह भौतिक रूप से एक प्रख्यात नदी है और तत्पश्चात् वाक् तथा देवी के रूप में भी प्रतिष्ठित है। देवी के रूप में उसे मूर्तिवत्ता नहीं मिली है, जैसा कि अन्य देवियों एवं देवों को पौराणिक काल में प्राप्त हुई है। पौराणिक काल की एक महान् देन यह है कि उस काल में प्रायः देवियों और देवों को उनकी मूर्तिवत्ता के साथ-साथ विशिष्ट वाहनों से संयुक्त कर दिया गया है। वेदों में सरस्वती को भौतिक रूप में अर्थात् एक पार्थिव नदी के रूप में प्रस्तुत कर उसे एक वाहन से संयुक्त समझा जा सकता है। यह सामान्यतः नदियों के साथ स्वीकृत है कि वे नदी भी हैं तथा उन-उन नदियों की वे देवी-स्वरूप भी हैं। सरस्वती के साथ यह बात विशेष-रूप से कही जा सकती है। यास्क ने इस सम्बन्ध में लिखा है :

सरस्वती नदीवद् देवतावच्च निगमा भवन्ति।[१]

ऋग्वेद में सरस्वती को एक नदी के रूप में स्वीकार कर उसे नदी की देवी भी माना गया है। देवी के रूप में वह अपने जल द्वारा वहन की जाती है। इस प्रकार जल उसका वाहन है। सरस्वती का अर्थ है कि जो सदा गतिमान् हो। सामान्यतः पौराणिक काल में वाहनों की कल्पना साकार होती है। यहाँ वाहन प्रतीक के रूप में हैं। भिन्न-भिन्न देवों के साथ उनको सम्बद्ध कर उन वाहनों के अनेक अर्थ निकाले गये हैं। प्रकृत सन्दर्भ में सरस्वती के वाहनों पर विचार किया जा रहा है।

ब्राह्मणिक सरस्वती का वाहन हंस है। पुराणों में सरस्वती को इसी से संयुक्त किया गया है। पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस देवी ने हंस-वाहन को अपने पिता ब्रह्मा से पैत्रिक सम्पदा के रूप में प्राप्त किया है। **मत्स्यपुराण** के अनेक अध्याय मूर्ति-विद्या की अनेक मान्यताओं का प्रतिपादन करते हैं। तदनुसार ब्रह्मा को कमलासनस्थ अथवा हंसाधिरूढ प्रस्तुत किया गया है।[२] इसी पुराण में सरस्वती की मूर्ति को हंसाधिरूढ प्रदर्शित किया गया है।[३]

---

१. **निरुक्त**, २.२३

२. म० पु० २६०. ४०

३. वही, २६१. २४-२५

जैन धर्म में अनेक विद्या-देवियाँ हैं। उनमें से वज्रश्रृङ्खला[4], काली[5], गान्धारी[6] इत्यादि को हंस-वाहनों से संयुक्त किया गया है।

हंस के अतिरिक्त मोर को भी सरस्वती का वाहन माना गया है। यह वर्णन पुराणों में उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु अन्यत्र इस का वर्णन पाया जाता है।[7] हंस की भाँति मोर को जैन-धर्म में कुछ विद्या-देवियों का वाहन माना गया है। रोहिणी,[8] प्रज्ञप्ति,[9] अप्रतिचक्रा[10] आदि देवियों का वाहन हंस है। जैन धर्म के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दो मुख्य सम्प्रदाय हैं। इन सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न देवियों के वाहन भिन्न-भिन्न हैं। उदाहरण के रूप में कुछ का वर्णन इस प्रकार है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की रोहिणी का वाहन हंस है।[11] इसी प्रकार इसी सम्प्रदाय को वज्रांकुश का वाहन हाथी है।[12] दिगम्बर सम्प्रदाय की अप्रतिचक्रा का वाहन गरुड,[13] पुरुषदत्ता का कोयल,[14] और काली का हिरण है।[15] इसी सम्प्रदाय की महाकाली का वाहन कच्छप है।[16] श्वेताम्बर सम्प्रदाय की महाकाली तथा गौरी के वाहन मनुष्य[17] तथा घडियाल[18] हैं।

१. हंस तथा मोर के तात्पर्यार्थ :

पक्षियों में हंस एक श्रेष्ठ पक्षी है। इसका वर्णन साहित्य में विविध प्रकार से हुआ हैं। कवियों एवं अध्यात्मवादियों ने इसे भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों में लिए हैं। इस प्रकार भौतिक तथा अध्यात्म-तत्त्व इस से अनेकशः जुड़े हैं। कवियों ने इस पक्षी को नीर-क्षीर विवेक से जोड़ रखा है, जिसका समाधान लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से

---

४. तु० बी० सी० भट्टाचार्य, **दि जैन आइकोनोग्राफी** (लाहौर, १९३९), पृ० १२४
५. **वही**, पृ० १२४
६. **वही**, पृ० १४१, १७३
७. चार्ल्स कालेमन, **दि माइथालोजी ऑफ दि हिन्दूज** (लन्दन, १८३२), पृ० ६
८. बी० सी० भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १६६
९. **वही**, पृ० १६७
१०. **वही**, पृ० ९८, १६९
११. **वही**, पृ० १६६
१२. **वही**, पृ० १६८
१३. **वही**, पृ० १६९
१४. **वही**, पृ० १२६
१५. **वही**, पृ० १७०
१६. **वही**, पृ० १२९
१७. **वही**, पृ० १७१
१८. **वही**, पृ० १७२

किया है। इसके अतिरिक्त यह कहा ज़ाता है कि यह पक्षी सदैव स्वच्छ जल तथा कमल वाले जलाशयों में रहता है। वर्षा-काल में जलाशयों का जल मलिन हो जाने पर भारत के भू-भागों को छोड़कर मानसरोवर को चला जाता है। यह अर्थ सामान्य-रूप से इसी प्रकार, परन्तु विशेष-रूप से अध्यात्म-भाव का बोधक है। इन अर्थों की गहराई में जाना प्रकृत विषय के मार्ग से च्युत होना है, अत एव इसे यहीं छोड़कर शीर्षक की सरणि ली जा रही है।

हम ने पहले बताया है कि यह पक्षी ब्रह्मा, सरस्वती तथा कतिपय अन्य देवों तथा देवियों के साथ जुड़ा हुआ है, अत एव विशेष-भाव का प्रतिपादन हमारी खोज और अन्यों की जिज्ञासा का विषय है। यह पक्षी दैवत्वापन्न समझा जाता है और यही कारण है कि इसे विष्णु के अवतारों में से गिना जाता है।[१९] प्रपञ्चसार, पटल ४ में इस सम्पूर्ण संसार को हंसात्मक कहा गया है। यह कथन दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में है, जिसके अनुसार सम्पूर्ण संसार हंस-स्वरूप अथवा हंसमय है। यह संसार हंस-स्वरूप अथवा हंसमय क्यों है, इसे निम्नलिखित कथन के सन्दर्भ से ही भली-भाँति जाना जा सकता है। यहाँ संसार का तात्पर्य व्यक्ति, व्यक्ति-समूह तथा उन सब के साथ जगत् तथा जागतिक पदार्थों की अन्विति है। इस प्रकार हंस के अर्थ से इन सब भावों का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। हंस का भाव इस प्रकार है :

'I am that'—जो इस प्रकार के समीकरण की भावना रखता है और संसार-भय को खो देता है, वह हंस है। इस अर्थ की परिकल्पना में हंस का विग्रह **'अहम्'** तथा 'सः' करना होगा या किया गया है। यहाँ **'अहम्' 'जीवात्मा'** तथा **'सः' परमात्मा** अथवा ब्रह्म का ज्ञापक है।[२०] यह हंस सरस्वती का वाहन है, अत एव इसी परिप्रेक्ष्य में सरस्वती की आध्यात्मिकता अथवा उससे सम्बद्ध पक्षों पर विचार करना चाहिए। पुराणों में सरस्वती के अध्यात्म पक्ष को कई स्थलों पर उभारा गया है। वह व्यक्तिगत रूप से तीनों संसारों, तीनों वेदों, तीनों अग्नियों, तीनों गुणों, तीनों अवस्थाओं और सम्पूर्ण तन्मात्राओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार वह संसार के निर्माण-सम्बन्धी सभी तत्त्वों का साक्षात् मूर्त-रूप है।[२१]

---

१९. वृन्दावन सी० भट्टाचार्य, इण्डियन इमेजेज, भाग १ (कलकत्ता), पृ० १३

२०. मोनियर विलियम्स, ए **संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी** (आक्सफोर्ड, १८७२), पृ० ११६३

"The vehicle of Brahma (represented as borne on a Hansa); the Supreme Soul or Universal Spirit (=Brahman: according to Say. on Rig-Veda IV. 40.5 in this sense derived either fr. rt. I. han in the sense 'to go' i. e., 'who goes eternally', or resolvable into aham sa I am that, i. e., the Supreme Being)"

२१. **वामनपुराण**, ३२.१०-१२; **स्कन्दपुराण**, ६.४६.२६-३०

जिस प्रकार आत्मन् संसार की सृष्टि करता है, इसी प्रकार सरस्वती संसार की सृष्टि करती है। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** में इस प्रकार का वर्णन मिलता है और इस सम्बन्ध में वहाँ सांख्य-सिद्धान्त का अनुकरण उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि आत्मन् सर्वप्रथम था, जिसकी शक्ति का नाम 'मूलप्रकृति' है। प्रारम्भ में आत्मन् निष्क्रिय था। जब उसे सृष्टि की इच्छा हुई, तब उसने स्वयं स्त्री एवं पुरुष का रूप धारण कर लिया। इसका स्त्री-रूप प्रकृति कहलाया। श्रीकृष्ण की इच्छानुसार यह प्रकृति पञ्चधा हो गई, जिनका नाम दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री था। इस प्रकार सरस्वती पाँच प्रकृतियों में से एक है, जो सृष्टि की कर्त्री है।[२२] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सरस्वती परमात्मा की शक्ति है,[२३] जिस शक्ति के आधार पर उसने संसार का निर्माण किया। कार्य की यह शक्ति उसे परमात्मा से घनिष्ठ-रूप से सम्बद्ध करती है। अन्ततोगत्वा यह सम्बन्ध समन्वय में परिवर्तित हो जाता है। सरस्वती से सम्बद्ध यह हंस इस समन्वय को भी अभिव्यक्त करता है।

हंस का तात्पर्यार्थ एक भिन्न प्रकार से भी स्पष्ट किया जा सकता है। पहले कहा गया है कि हंस, 'I' and 'He' के तादात्म्य को अभिव्यक्त करता हैं। 'I' and 'He' के तादात्म्य की भावना सम्पूर्ण ज्ञान की रक्षक है। हंस का ज्ञान से गहरा सम्बन्ध है और तथाकथित ज्ञान के सन्दर्भ से हंस सरस्वती से सम्बद्ध है। हंस एक मंत्र का भी नाम है, जिसे **'अजपा मंत्र'** कहते हैं और जो विना प्रयत्न के बोला जाता है। इसकी ध्वनि चरम सत्ता की चरम ध्वनि का प्रतिनिधित्व करती है। इसी चरम ध्वनि के बल पर ज्ञान वितरित होता है। सरस्वती से सम्बद्ध हंस इन सब का प्रतिनिधित्व करता है। इसी कारण सामान्य जन-विश्वास में हंस ज्ञानवान् कहा जाता है। सरस्वती का हंस-गमन ज्ञान के साथ भ्रमण करना है।

इसके अतिरिक्त हंस शुद्धता (purity) को व्यक्त करता है। इस शुद्धता अथवा निर्मलता का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं से नहीं है, अपितु मन अथवा मस्तिष्क की तथाकथित भावना को अभिव्यक्त करता है। इस अवस्था में यह मस्तिष्क अथवा मन सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त रहता है।[२४] सरस्वती से सम्बद्ध हंस उसकी पवित्रता को अभिव्यक्त करता है, क्योंकि वह ज्ञान का साक्षाद्-रूप है और ज्ञान ऐसा साधन है, जिससे शाश्वत् पवित्रता प्राप्त की जाती है।

---

२२. **वायुपुराण**, ६. ७१-८७

२३. **दि माडर्न साइक्लोपीडिया**, भाग ७ (लन्दन), पृ० ३४४
"The name of Sarasvati itself implies the female energy."

२४. जान गैरट, **क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ इण्डिया** (मद्रास, १८७१), पृ० ६६८

अब अन्त में मोर का तात्पर्यार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। मोर के लिए संस्कृत में 'शिखिन्' शब्द का प्रयोग मिलता है। यह 'शिखिन्' शब्द मोर तथा अग्नि अर्थ का वाचक है।[२५] अग्नि का तादात्म्य सरस्वती से[२६] और सरस्वती (वाणी) का तादात्म्य यज्ञ से है।[२७] अग्नि की तीन लपटें (forms) सरस्वती के तीन रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सम्भवतः सरस्वती अग्नि के साथ अपने अटूट सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने के लिए मोर को वाहन बनाती है, जो मोर अग्नि का प्रतीक है।

---

२५. मोनियर विलियम्स, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १००५

२६. **वामनपुराण**, ३२. १०; ऋ० २. १. ११

२७. **शतपथब्राह्मण**, ३. १. ४६.१४
"vvag vai sarasvati vvag yajnah."

—१०—

ग्रीक और रोमन पौराणिक कथा में सरस्वती की समकक्ष देवियाँ

ग्रीक और भारतीय पौराणिक कथा में अनेक समताएँ उपलब्ध होती हैं। स्पष्टतः वहाँ बहुदेववाद[1] होने पर भी ग्रीस, रोम तथा भारत की देवियों में आश्चर्य-युक्त समानताएँ उपलब्ध होती हैं।[2] ग्रीक की कुछ देवियाँ रोमन देवियों के समकक्ष हैं। जैसे ग्रीक '**अफरोदिते**' रोमन '**वेनस**' के समकक्ष है। ग्रीक '**एथीन**' रोमन '**मिनर्वा**' के समकक्ष हैं।[3] इसी प्रकार अन्य देवियों में समानताओं का अन्वेषण किया जा सकता है। यहाँ 'समकक्षता' अथवा 'समानता' का तात्पर्य कार्यों की तुलनात्मक तुल्यता है अथवा स्थान-विशेष की तुल्यता है। इस तुल्यता में अन्य अनेक बातों का समावेश होता है। इन समानताओं का मेल हमें इस बात की याद दिलाता है कि इन विप्रकृष्ट देशों में अति प्राचीन काल में पारस्परिक सम्बन्ध था और उनमें लेन-देन की प्रथाएँ प्रचलित थीं। प्राचीन काल में इन देशों की भौगोलिक स्थिति आज जैसी नहीं थी और यह कल्पना की जाती है कि इनका पारस्परिक संबन्ध समुद्री मार्गों से जुड़ा था। ये समुद्री मार्ग इन देशों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सम्बन्धों के निमित्त जोड़े हुए थे। प्रकृत विषय में यह कहा जा सकता है कि भारतीय सरस्वती रोमन मिनर्वा तथा ग्रीक एथीन के समकथ है। एथीन को एथना भी कहते हैं, जिसे रोमन मिनर्वा से समीकृत करते हैं।[4]

१. सरस्वती तथा मिनर्वा :

मिनर्वा रोमन देवी है। वह सम्पूर्ण आर्ट्‌स, व्यापार, स्मृति तथा युद्ध की संरक्षिका है।[5] सरस्वती भी सभी प्रकार के कलाओं और विद्याओं की संरक्षिका है।[6]

---

१. सिडनी स्पेन्सर, **मिस्टिसीज्म इन वर्ल्ड रिलीजन** (लण्डन, १९६६), पृ० १२२

२. चार्ल्स कालेमन, **दि माइथालोजी ऑफ दि हिन्दूज** (लण्डन, १८३२), पृ० १०

३. सी० विट, **मिथ्स ऑफ हेल्लास आर ग्रीक टेल्स** (न्युयार्क, १९०३), पृ० १० (भूमिका भाग)

४. **इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका**, भाग २ (शिकागो, १९६६), पृ० ६६८

५. **चैम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया**, भाग ९ (लण्डन, १९६७), पृ० ४२७

६. जान डाउसन, **ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी** (लण्डन, १९६१), पृ० २८४

उसका किसी भी व्यापार अथवा वाणिज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। यह उन में एक महान् अन्तर है। **ऋग्वेद** में सरस्वती के दो रूप उपलब्ध होते हैं। वह एक रूप से सौम्य है, तो दूसरे रूप से असौम्य है। उसके असौम्य रूप को प्रकट करने के लिए स्वतः **ऋग्वेद** में कतिपय विशेषण प्रयुक्त हैं। ऐसे विशेषणों में 'घोरा'[७] और 'वृत्रघ्नी'[८] प्रमुख हैं। ये विशेषण यह घोषित करते हैं कि उस का युद्ध से घनिष्ठ है। सरस्वती के विशेषण 'वृत्रघ्नी' से ज्ञात होता है कि वह इन्द्र के शत्रु वृत्र का हनन करती है और इन्द्र की सहायता करती है। इसके अतिरिक्त **ऋग्वेद** में सरस्वती को वीरों की रक्षा करते हुए प्रदर्शित किया गया है तथा इस कारण से उसे 'वीरपत्नी' कहा गया है।[९] सरस्वती से सम्बद्ध ये वीरतापूर्ण कार्य हमें इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि अति प्राचीन काल में शक्ति-पूजा की कल्पना जन्म ले चुकी थी। फलतः वीर युद्धों में जाने के पूर्व अपनी रक्षा एवं विजय के लिए सरस्वती का किसी न किसी प्रकार आवाहन और उत्प्रेरण किया करते थे। **ऋग्वेद** में सरस्वती को 'पावीरवी' कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि सरस्वती अपने हाथ में 'पवि' अस्त्र रखती थी।[१०] यह देवी **ऋग्वेद** में स्पष्टतर रूप से युद्ध की देवी वर्णित नहीं है, परन्तु उस के साहसिक तथा वीरतापूर्ण कार्य इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि उस के चरित्र में युद्ध-भाव प्रविष्ट हो गया है। इस भाव की झलक कुछ अन्य प्रसङ्गों से जानी जा सकती है। उदाहरण के रूप में एक प्रसङ्ग को स्पष्ट किया जा रहा है। प्रकृति-परक सिद्धान्त के आधार पर सरस्वती का एक रूप माध्यमिका वाक् है। वह मध्यम स्थान अन्तरिक्ष में बादलों में निवास करती है तथा जल-युक्त मेघ में माध्यमिका वाक् है, जिसमें बिजली चमकती है और शब्द होता है। वृत्र भी मेघ ही है, जो जल का वर्षण नहीं करता। सूर्य को इन्द्र कहा गया है, जो तेज तथा शक्ति का प्रतीक है। उसी का तेज विद्युत् के रूप में अन्तरिक्षस्थ बादलों में रहता है और वही तेज विद्युत् के रूप में निकल कर न वर्षने वाले बादलों को बरसने के लिए प्रेरित करता है। इन्हीं बिजली के क्षेपणों को इन्द्र-वज्र-(पवि) क्षेपण कहा गया है। यद्यपि यह कार्य सरस्वती का है, तथापि इसे इन्द्र का कार्य माना गया है। सरस्वती का यही कार्य इन्द्र को वृत्र-वध में सहायता पहुँचाना है। इन्द्र (सूर्य) वीर का प्रतीक है। वैदिकेतर साहित्य में कार्त्तिकेय और दुर्गा युद्ध से सम्बद्ध हैं, परन्तु वैदिक साहित्य में उन का नाम भी उपलब्ध होता है। सरस्वती का युद्ध-सम्बन्धी रूप उस के 'घोर' रूप से तथा इन्द्र और वृत्र के सम्बन्धों से प्रकट होता है।

---

७. ऋ० ६.६१.७

८. **वही**, १.६१.७

९. तु० विलसन व्याख्या **वही**, ६.४९.७ (वीरपत्नी के सन्दर्भ से)

१०. तु० **वही**, ६.४९.७; १०.६५.१३ पर सायण, गेल्डनर, मोनियर विलियम्स के मत 'पावीरवी' के प्रसङ्ग से।

रोमन देवी मिनर्वा भी सरस्वती की भाँति दो रूपों में हमारे सम्मुख आती है। वह एक रूप से सायुध मिनर्वा (armed Minerva) तथा दूसरे से निस्सस्त्र (unarmed Minerva) कहलाती है।[११] सायुध मिनर्वा सरस्वती की भाँति अनेक कार्यों को करती है, परन्तु अपने कोमल रूप से वह अक्षरों (शब्दों) की संरक्षिका है, जो कवित्वपूर्ण कार्य के लिए आवश्यक हैं।[१२] अपने कोमल स्वभाव से मिनर्वा कलाओं और स्मृति की संरक्षिका है।[१३] सरस्वती अपने सौम्य रूप से विद्या, सङ्गीत, कविता, इतिहास, कला, आदि की संरक्षिका है। सायुध मिनर्वा को युद्ध की देवी माना गया है। वह इस रूप में चमकता हुआ कवच, विषैला फावड़ा[१४] और अपने जन्म से ही संरक्षक शस्त्र को धारण करती है।[१५]

२. सरस्वती और ग्रीक म्युज़ेज :

सरस्वती और ग्रीक म्युज़ेज के व्यक्तित्व में अपेक्षाकृप अधिक समानताएँ हैं। सरस्वती वैदिकेतर पौराणिक कथा में उन सभी विद्याओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो बुद्धिमत्ता और वक्तृत्व-शक्ति से उत्पन्न होती हैं। इतना ही नहीं, अपितु वह बुद्धिमत्ता एवं वक्तृत्व-शक्ति की देवी मानी जाती हैं। फलतः तदर्थ एक 'म्यूज़' के रूप में उस का बारम्बार आवाहन हुआ है।[१६] भारतीय विद्या-सम्बन्धी विचार-धारा ग्रीक पौराणिक कथा में भी पाई जाती है। वहाँ इन भारतीय 'विद्या' अथवा 'गोप्या' को 'म्यूज़' की संज्ञा दी गई है।[१७] सरस्वती तथा ग्रीक म्यूज़ेज की तुलना करने के पूर्व यह अपेक्षित जान पड़ता है कि सर्वप्रथम हम प्राचीन साहित्य में सरस्वती की म्यूज़-सम्बन्धी कल्पना को भली-भाँती जान लें। 'म्यूज़' का अर्थ काव्य, सङ्गीत आदि कलाओं की देवी है। सरस्वती के साथ इस प्रकार की परिकल्पना अति प्राचीन काल से जुड़ी है, अत एव इस का एक स्पष्ट आकलन अत्यन्त आवश्यक है।

३. ऋग्वेद तथा म्यूज़-परिकल्पना :

यह सर्वज्ञात है कि **ऋग्वेद** पौराणिक काव्य-शैली में लिखित है। यह आज जैसा काव्य नहीं है, परन्तु इस के अध्ययन से ऋचा से हटकर काव्य की कुछ झलकियाँ उपलब्ध होती हैं। **ऋग्वेद** में स्थूल शरीरिणी देवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी

---

११. तु० एच० ए० गर्बर, **दि मिथ्स ऑफ ग्रीस एण्ड रोम** (लण्डन), पृ० ३९-४३
१२. ए० आर० होप मानकिफ, **क्लासिक मिथ एण्ड लेजेण्ड** (लण्डन), पृ० ३८
१३. **चेम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया**, भाग ९, पृ० ४२७
१४. एच० ए० गर्बर, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ३९
१५. ए० आर० होप मानकिफ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ३७
१६. जेम्स हेस्टिङ्गस, **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रीलीजन एण्ड एथिक्स** (न्युयार्क, १९५४), पृ० १९६
१७. चार्ल्स कालेमन, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १०

देवियों की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं, जो नितान्त सूक्ष्म शरीरिणी हैं तथा जिनका सूक्ष्म विचारों से प्रगाढ सम्बन्ध है। ऐसी देवियों में श्रद्धा[१८], अनुमति[१९], इत्यादि प्रमुख हैं। इन देवियों का अध्ययन हमें विश्वास दिलाता है कि ऋग्वैदिक ऋषि भिन्न-भिन्न सूक्ष्म पदार्थों की खोज में थे, जो उन्हें काव्य के अन्वेषण में साहाय्य प्रदान कर सकें। काव्य के लिए मौलिक अपूर्व बुद्धि की आवश्यकता होती है। इस अपूर्व बुद्धि को प्राप्त करने के लिए ऋषियों ने सूक्ष्म-विचारों पर दैवत्वारोपण किया और उन की अनेकशः आराधना किया। इस अन्वेषण में सूनृता[२०], सूर्या[२१], आदि की देवी-रूप में महती आराधना हुई और इन्हें अपूर्व बुद्धि के काव्य की देवियाँ स्वीकार किया गया। गेल्डनर 'सूर्या' अथवा 'सूर्यस्य दुहिता' (ऋ० १०.७२.३) में इसी प्रकार की उद्भावना स्वीकार करते हैं और वह उसे काव्य तथा गीत की अपूर्व बुद्धि स्वीकार करते हैं। कुछ इसी प्रकार की विचार-धारा सरस्वती से संयुक्त है, जहाँ उसे **'चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्'**[२२] कहा गया है। इस प्रकार यहाँ सरस्वती एवं सूर्या में अत्यन्त निकटता है।

वैदिकेतर साहित्य में सरस्वती एक देवी एवं काव्य की संरक्षिका मानी गई है, परन्तु इसका बीज **ऋग्वेद** में भी प्राप्त होता है, क्योंकि कतिपय स्थलों पर उसे बुद्धि की संरक्षिका माना गया है। इस प्रसङ्ग में **ऋग्वेद** में एक स्थल पर उसे **'धीनाम् अवित्री'**[२३] कहा गया है। सूर्या सर्वप्रथम ऋग्वैदिक काव्य की एक देवी थी, उस ने बाद में सचेतन काव्य का रूप धारण कर लिया और सरस्वती काव्य की देवी बन गई।[२४] वैदिक देव-कथा में सूर्या को वाक् माना गया है तथा यह भी ध्यातव्य है कि वाक् सूर्या तथा सरस्वती का पर्याय है। इस सम्बन्ध में हम **निघण्टु** के काल को रेखाङ्कित कर सकते हैं, जहाँ सूर्या तथा सरस्वती का समीकरण हुआ है तथा जहाँ सूर्या का व्यक्तित्व सरस्वती में मिल गया है। यह बात सूर्या तथा सरस्वती के वाक् कहे जाने से स्वतः स्पष्ट है।[२५]

४. सरस्वती और ग्रीक म्यूज़ेज की समानताएँ :

'म्यूज़' ग्रीक मेन (men) से बना है, जिसका अर्थ सोचना अथवा याद करना

---

१८. **ऋ०** १०.१५१.५

१९. **वही,** १०.५९.६,१६७.३

२०. **वही,** १.४०.३; १०.१४१.२

२१. **वही,** ९.७२.३

२२. तु० सायण, माधव, विल्सन और ग्रीफिथ **वही,** १.३.११

२३. **वही,** ६.६१.४

२४. एस० एस० भावे, 'दि कान्सेप्शन ऑफ म्यूज़ ऑफ पोयिट्री इन दि ऋग्वेद

२५. **निघण्टु,** १.११

है ।[२६] ग्रीक म्यूज़ेज प्रथमतः तीन थीं,[२७] परन्तु अब उनकी संख्या नौ है तथा वे सब प्राचीन जेयस (Zeus) तथा मीमासीम् (Mnemosyme) की पुत्रियाँ हैं। वे सब कवित्व-बुद्धि की प्रतीक हैं और एक कवि को उस की कवि-साधना में सहायता देती हैं ।[२८] सरस्वती भी इसी प्रकार के कार्य से सम्बद्ध है और विशेष-रूप से लौकिक साहित्य में उसे कवियों की उद्‌बोधिनी अथवा उन्हें अपने कवि-कर्म में उत्साह-प्रदान करने वाली स्वीकार किया गया है । उसे उत्साह की देवी माना गया है। यह अर्थ श्रीअरविन्दो ने किया है ।[२९] उसे उत्साह की देवी मानने का अर्थ एक प्रकार से उसे अपूर्व कवित्व-बुद्धि अथवा काव्य-सम्बन्धी-शक्ति की उद्‌भावना करने वाली ही मानना है ।

ग्रीक पौराणिक कथा में नौ प्रकार की म्युज़ेज मानी गई हैं, जिन के नाम क्लीओ (Clio), यूटर्पी (Euterpe), थालिया (Thalia), मेलपोमीन (Melpomene), टर्प्सीचोर (Terpsichore), इराटो (Erato), पालिमनिया (Polymnia), यूरैनिया (Urania) तथा कैलियप्प (Calliope) है ।[३०] ग्रीक-साहित्य में इन म्युज़ेज के स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हैं, क्योंकि वे भिन्न-भिन्न कार्यों और अत्यन्त निश्चित कर्त्तव्यों से संयुक्त हैं । क्लीओ इतिहास का प्रतिनिधित्व करती है। यूटर्पी गायन-सम्बन्धी कविता (Lyric poetry), थालिया सुखान्त, मेल्पोमीन दुःखान्त, टर्प्सीचोर नृत्य एवं गीत, इराटो प्रेम-गीत (Love song), पालिमनिया मधुर स्तुति (Sublime hymn), यूरैनिया ज्योतिष विद्या और कैलियप्प वीरचरित्र-सम्बन्धी काव्य का प्रतिनिधित्व करती हैं ।[३१] इसी प्रकार सूनृता[३२], वार्कार्या[३३], सूर्यस्य दुहिता[३४], ससर्परी[३५], इत्यादि कविता की देवियाँ अथवा काव्य की अपूर्व बुद्धि के रूप में गृहीत हैं तथा उन्हें म्युज़ेज माना जा सकता है । ये सभी देवियाँ बाद में चलकर सरस्वती के व्यक्तित्व में घुल-मिल गई हैं तथा यह सरस्वती देवी अकेले अनेक रूपों से विद्या, कला, साइंस,

---

२६. विर्जिलीयस फर्म, **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन**, पृ० ५११

२७. क्लैरेन्स एल० वार्न हार्ट, **दि न्यु सेन्चुरी साइक्लोपीडिया ऑफ नेम्स**, भाग २, (न्युयार्क, १९५४), पृ० २८६८

२८. विर्जिलीयस फर्म, पूर्वोद्‌धृत ग्रंथ, पृ० ५११

२९. श्रीअरविन्दो, **ऑन दि वेद** (अरविन्दो आश्रम, पाण्डिचेरी, १९५६), पृ० १०४-१०५

३०. जेम्स हेस्टिङ्गस, पूर्वोद्‌धृत ग्रंथ, पृ० ४

३१. ए० आर० होप मानक्रिफ, पूर्वोद्‌धृत ग्रंथ, पृ० ३४

३२. ऋग्वेद, १.४०.३; १०.१४१.२

३३. वही, १.८८.४

३४. वही, ९.७२.३

३५. वही, ३.५३.१५

कविता इत्यादि की देवी अथवा रक्षिका के रूप में कार्य करती है।

ग्रीक म्युज़ेज के समान सरस्वती विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। ब्राह्मी अथवा ब्रह्माणी के रूप में सरस्वती सम्पूर्ण साइन्सेस की देवी समझी जाती है तथा भारती के रूप में वह इतिहास की देवी है।[३६] पौराणिक काल में सरस्वती के एक हाथ में वीणा प्रस्तुत की गई है। यह वीणा उसे सङ्गीत से सम्बद्ध करती है।[३७] वह केवल वीणा से सम्बद्ध ही नहीं है, अपितु सङ्गीतकारों की अभीष्ट देवी भी मानी जाती है। सामूहिक-रूप से सभी ग्रीक म्युज़ेज सङ्गीत तथा नृत्य से प्रेम रखती हैं। कहा जाता है कि उन्होंने एकत्रित देवों का मनोरञ्जन किया और गाने वालों या नाचने वालों की मण्डली के नेता के रूप में अपोलो ने उनका नेतृत्व किया। उनका सङ्गीत तथा नृत्य के प्रति प्रगाढ प्रेम है। यह प्रेम इतना अधिक है कि उन्होंने अपने इस प्रेम का प्रदर्शन अगनिप्पी नदी के चारो ओर डेल्फ़ी (Delphi) में हेलिकन पर्वत (Mt. Helicon) पर किया।[३८] ये म्युज़ेज एक पार्थिव नदी से अत्यधिक रूप से सम्बद्ध हैं। उस नदी का नाम हिप्पोक्रीन (Hippocrene) है। पौराणिक कथा के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि वह नदी एक दैवी अश्व के खुर-प्रहार से प्रवाहित हुई है तथा इस दैवी अश्व का नाम पैगासस् (Pegasus) है।[३९] इस प्रकार यह नदी उस दैवी अश्व से सम्बद्ध है, अत एव उसकी दिव्यता में संदेह नहीं किया जा सकता। इन ग्रीक म्युज़ेज का निवास ओलिम्पस पर्वत (Mt. Olympus) के निकटस्थ स्थान में है। इस प्रकार यह माना जाना चाहिए कि ये म्युज़ेज उस पर्वत के देवों से सम्बद्ध हैं।[४०] इन म्युज़ेज का एक पर्वत तथा नदी का सम्बन्ध उन्हें स्वतः सरस्वती के समकक्ष लाता है, जो सरस्वती एक नदी के रूप में एक पर्वत से समुत्पन्न हुई है,[४१] जिसका चरित्र दैवी है।[४२] पिप्पोक्रीन नदी पेगासस् के खुर से निकली है। पेगासस्

३६. चार्ल्स कालेमन, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ९

३७. तु० "वीणापुस्तकधारिणी" उपाधि जो सरस्वती के लिए प्रयुक्त है : **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, २.१.३५, २.५५; **अग्निपुराण**, ४.१६; डॉ० प्रियबाला शाह, **विष्णुधर्मोत्तरपुराण**, तीसरा भाग (बड़ौदा, १९६१), पृ० २२५

३८. जेम्स हेस्टिङ्गस, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ४

३९. तु० श्रीअरविन्दो, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १०५; पेगासस् के विस्तृत ज्ञान के लिए द्र० जेम्स हेस्टिङ्गस, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, भाग १२, पृ० ७४१-७४२

४०. द्र० ओलिम्पस के देवता—आर० पी० वैरन्, **दि गाड्स ऑफ माउण्ट ओलिम्पस** (न्युयार्क, १९५९), पृ० १-५२

४१. ऋ० ७.९५.२

४२. तु० वही, ७.९५.२; मैक्स मूलर, **सेक्रेड बुक्स ऑफ दि इस्ट**, भाग ३२ (दिल्ली), पृ० ५७-५८

शब्द संस्कृत के 'पाजस्' के निकट है, जिसका अर्थ शक्ति अथवा गति है।[४३] इस प्रकार पेगासस् के मूल में पाजस् धातु है। सरस्वती भी सृ=गतौ से निर्मित है और गति-अर्थ को ध्वनित करती है। वह माध्यमिका के रूप में मेघों में निवास करती है।[४४] इस प्रकार सरस्वती (नदी) तथा हिप्पोक्रीन (नदी) के उत्पत्ति-क्रम में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। निकटता के साथ-साथ थोड़ा अन्तर हैं तथा यह अन्तर यह है कि सरस्वती का धरती पर अस्तित्व इन्द्र देवता के कारण है,[४५] जब कि हिप्पोक्रीन का जन्म पेगासस् अश्व के द्वारा हुआ है। यह अन्तर अत्यल्प है। यही कारण है कि यह अन्तर इन्द्र[४६] तथा पेगासस्[४७] के दार्शनिक महत्त्व की हानि नहीं पहुँचाता है, क्योंकि दोनों ही शक्ति अथवा तेजस् के प्रतीक हैं।

---

४३. श्रीअरविन्दो, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १०६

४४. तु० **अथर्ववेद**, ७.१२.१; श्रीपाददामोदर सातवलेकर, **अथर्ववेद सुबोध भाष्य**, भाग ३ (सूरत, १९५८), पृ० ४५ (**अथर्व**० ७.१२.१ के सन्दर्भ में)

५५. तु० **वृष्णः पत्नीः ऋ**० ५.४२.१२ में आया है, जिसका अर्थ सायण ने इस प्रकार किया है : "**वृष्णः वर्षकस्येन्द्रस्य पत्नीः**···**नद्यः । नदनशीला गङ्गाद्याः ।**" गेल्डनर ने इसका अर्थ वृषभ अर्थात् इन्द्र की पत्नियाँ किया है।

४६. मोनियर विलियम्स, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० १४०

४७. श्रीअरविन्दो, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, १०६

–११–

ब्रह्मा और सरस्वती के मध्य पौराणिक प्रेमाख्यान

ब्रह्मा प्रेमातुर होकर अपनी ही पुत्री के साथ बलात्कार किया, यह उपकथा पुराणों में पूर्ण-रूप से विकसित हुई है। वेदों में प्राकृतिक उपादान के रूप में इस कथा का वर्णन भिन्न प्रकार से हुआ है। यहाँ इन वैदिक स्रोतों की ओर यथा-स्थान वर्णन हुआ है। पौराणिक इस कथा का वर्णन बहुत कुछ अस्पष्ट है, परन्तु फिर भी इसकी विशेषताएँ हैं। इसका वर्णन विभिन्न पुराणों में कई स्थलों पर हुआ है। इसका एक संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है।

ब्रह्मा तथा सरस्वती के मध्य यह कथा एक आलङ्कारिक रूप में वर्णित है। इस कथा के द्वारा यह दिखाया गया है कि ब्रह्मा ने एक पिता होते हुए भी अपनी पुत्री के साथ बलात्कार किया। कतिपय अन्य पुराणों की अपेक्षा **मत्स्यपुराण** में तथाकथित कथा का विस्तृत वर्णन है। इस पुराण में वर्णित है कि सरस्वती ब्रह्मा के अर्ध शरीर में उन की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। इसका शरीर अत्यन्त सुन्दर तथा मुग्धकारी था। जब ब्रह्मा ने सरस्वती को देखा, तब वह उस पर अत्यन्त मुग्ध हो गये और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए बोले "ओह ! कितना सुन्दर रूप है", "ओह ! कितना सुन्दर रूप है।" ब्रह्मा ने अपने ये औपन्यासिक वचन स्वयं अपने मानस पुत्रों की उपस्थिति में कहा। फलतः सरस्वती ने अतीव लज्जा का अनुभव किया। वह अत्यन्त पश्चाताप में ब्रह्मा के चारो ओर प्रदक्षिणा करने लगी। ब्रह्मा प्रेमातुर थे, अत एव उन्हें कुछ भी शोक नहीं हुआ। वह निरन्तर निर्निमेष दृष्टि से अपनी पुत्री को निहारना प्रारम्भ कर दिया। पुत्री के प्रदक्षिणा करने पर वह चतुर्मुखधारी हो गये, जिससे पुत्री को निरन्तर देख सकें। तदनन्तर सरस्वती पश्चाताप एवं लज्जावश स्वर्ग की ओर बढ़ने लगी। ब्रह्मा तब भी शान्त नहीं हुए। वे पुनः पाँच मुखों वाले हो गये, जिससे पञ्चम मुख द्वारा सरस्वती को स्वर्ग जाते हुए भी देख सकें। अन्ततोगत्वा ब्रह्मा ने सृष्टि का कार्य अपने पुत्रों को सौंप दिया और सरस्वती से विवाह कर लिया, जो सैकड़ों रूपों की राशि (शतरूपा) थी। इस प्रकार ब्रह्मा कमल-मन्दिर में रहते हुए एक सौ साल तक सरस्वती के साथ सम्भोग किया।[1]

इस पुराण से स्पष्ट नहीं हैं कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को कैसे वशीभूत किया, जबकि वह अनिच्छुक थी। वस्तुतः ऐसी स्थिति में प्रेम का परिपाक नहीं होता। शास्त्र में प्रतिपादित हैं कि प्रेम का परिपाक स्त्री तथा पुरुष दोनों के समान इच्छुक

---

१. **मत्स्यपुराण**, ३.३०; तु० **वामनपुराण**, २७.५

होने पर ही होता है। **मत्स्यपुराण** में इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है, परन्तु **भागवतपुराण** का कथन है कि सरस्वती सर्वप्रथम अनिच्छुक थी तथा उन्होंने सरस्वती का हृदय जीता।[२]

जब ब्रह्मा ने सरस्वती के साथ विवाह कर लिया, तब उनकी तपस्या की महत्ता समाप्त हो गई तथा उन्हें पुनः तपश्चरण करना पड़ा। इस तपस्या के फल-स्वरूप उन्होंने अपने आधे शरीर से अपनी पत्नी को उत्पन्न किया।[३] उनकी यह पत्नी सृष्टि को उत्पन्न करने में समर्थ थी तथा यह साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति थी। वह एक सुरभि के रूप में ब्रह्मा के समीप खड़ी रही। ब्रह्मा ने उसकी सङ्गति का आनन्द उठाया। उस सङ्गति से धुँए के समान वर्ण की सन्तति उत्पन्न हुई।[४] प्रकृत सन्दर्भ में ब्रह्मा की स्त्री का साक्षात् रूप से नाम का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यहाँ सावित्री की ओर सङ्केत किया गया है, जिसकी पुष्टि निम्नलिखति कथन से होती है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में सावित्री को ब्रह्मा की पत्नी बताया गया है। जब ब्रह्मा ने उसकी सङ्गति का आनन्द उठाया, तब वेद, शास्त्र, वर्ष, मास, दिन, रात्रि, सूर्य-ज्योति, उषा इत्यादि की उत्पत्ति हुई[५]। पुराणों में सरस्वती तथा सावित्री का वर्णन विभिन्न प्रसङ्गों में हुआ है। प्रकृति के रूप में दोनों समकक्ष हैं[६] तथा कतिपय अन्य प्रसङ्गों में उन्हें मूलतः एक माना गया है। कभी-कभी वे दोनों हमारे सम्मुख ब्रह्मा की दो पत्नियों के रूप में आती हैं।[७]

१. ब्रह्मा एवं सरस्वती के प्रेमाख्यान का स्रोत :

इस कथा का मूल स्वतः **ऋग्वेद** में उपलब्ध होता है। इस प्रसङ्ग में एक मंत्र निम्नलिखित प्रकार का है।

महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान्।
सृजदस्ता धृषता दिद्युस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात्॥[८]

इसी प्रकार **ऋग्वेद** के दशम मण्डल के कुछ मन्त्र इसी प्रसङ्ग में अत्यन्त उपादेय हैं तथा उनमें तीन मंत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ऊपर के उद्धृत मंत्र में 'पित्रे' देवों के उस समूह के रूप में आया है, जो स्वर्ग में निवास करता है। **'दुहितरि'** प्रकाश का द्योतक है। सायणाचार्य इसका अर्थ करते हैं : "**उषः काले हि सूर्यकिरणाः प्रादुर्भ-**

---

२. **भागवतपुराण**, ३.१२.२८
३. **मत्स्यपुराण**, १७१.२०-२३
४. **वही**, १७१.३४-३६
५. **ब्रह्मवैवर्तपुराण**, १.८.१-६
६. **वही**, २.१.१,४.४
७. **मत्स्यपुराण**, ३.३०-३२
८. **ऋ०** १.७१.५

वन्ति।" स्पष्टतः यहाँ उषा तथा प्रकाश का वर्णन है, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध हमें एक दैहिक सम्बन्ध जान पड़ता है।

इस सम्बन्ध में **ऋग्वेद** के दशम मण्डल के तीनों मंत्रों का अवलोकन अपरिहार्य जान पड़ता है।[९] यहाँ रुद्र को रुद्र कहा गया है तथा वह रुद्र रुद्र को उत्पन्न करता है। इस कथन का अभिप्राय बहुत कुछ अस्पष्ट है। अर्थ की अन्विति के लिए उचित व्याख्या की नितान्त आवश्यकता है, अत एव इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है कि रुद्र प्रजापति है, अर्थात् प्रजापति सन्तति का स्वामी है (प्रजानाम्+पतिः)। जहाँ यह कहा गया है कि रुद्र रुद्र को उत्पन्न करता है, तब इसका अभिप्राय यह है कि प्रजापति (रुद्र) ने **देवों** को उत्पन्न किया। **रेतस्** का अर्थ कर्म है तथा इस कर्म के द्वारा उत्पन्न रुद्र या तो दिन है अथवा उषा है। इस कथा द्वारा संसार तथा प्राणियों की सृष्टि की आदि अवस्था का बोध होता है। प्रारम्भावस्था में केवल प्रजापति था और जब उसने सृष्टि की आकांक्षा की, तब उसने सबसे पहले अपने में से ही देवों को उत्पन्न किया। इस सृष्टि के पूर्व चारो ओर अंधकार ही अंधकार था। उसने अंधकार को दूर किया। अंधकार को दूर करने का अभिप्राय सृष्टि करना है। एतदर्थ उसने अपने को अनेक भागों में विभक्त किया। ये सभी भाग देव हैं तथा ये देवगण भी प्रजापति हैं। कहा जाता है कि आदित्य बारह हैं तथा रुद्र ग्यारह हैं। यह विभाजन लगभग समान है। इस प्रकार रुद्र तथा प्रजापति एक हैं और देवता उसकी सन्तति हैं, जिन्हें उसने दिन अथवा उषा के गोद में पैदा किया। जब तक अंधेरा था, तब तक कुछ भी पैदा नहीं हुआ तथा प्रकाश ही वस्तुओं अथवा पदार्थों के समुत्पादन में समर्थ था। प्रतीकात्मक रूप से दिन अथवा उषा शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके आधार पर वस्तुएँ अस्तित्व में आईं।

इस उपकथा का वर्णन एक भिन्न प्रकार से भी किया जा सकता है। वैदिक विषय नितान्त गूढ तथा रहस्यमय हैं तथा एक ही समय में उनके भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये हैं। यही कारण है कि किसी विषय के प्रतिपादन में अनेक शैलियों की सहायता ली गई है तथा अनेक सिद्धान्तों तथा पथों ने जन्म ले लिया है।

वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सांसारिक पदार्थ तथा प्राणिजात अनेक देवों के अंशों से उत्पन्न हुए हैं। हम इस सम्बन्ध में **ऐतरेय-उपनिषद्** को उद्धृत कर सकते हैं। इसका कथन है कि विभिन्न देव अपने स्थूल रूप से विभिन्न लोकों अथवा स्थानों में निवास करते हैं, परन्तु अपने सूक्ष्म रूप से सांसारिक पदार्थों अथवा वस्तुओं में निवास करते हैं।

"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्। वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्। आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्। दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्। ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्। चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्। मृत्युरपानो भूत्वा

---

९. **वही**, १९.६१.५-७

नाभिं प्राविशत् । आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।"

ऐ० उ० १.२.४

सायणाचार्य ने 'दुहितृ' का अर्थ दिन अथवा उषा किया है । तदनुसार हम इस कथा को एक भिन्न प्रकार से व्याख्यायित कर सकते हैं । प्रजापति एक स्वर्गीय देव है, अत एव उसने सर्वप्रथम स्वर्गीय देव का सर्जन स्वर्ग में किया होगा (दिवि; द्यु=to shine and देव is one who is incessantly shining). प्रकृत सन्दर्भ का ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि प्रजापति ने सर्वप्रथम उच्चतम आकाश में अपने रेतस् का आधान किया होगा, जहाँ उषा दिन आने के पहले निवास करती है । ब्रह्मा तथा सरस्वती का दैहिक मिलन तथा तत्पश्चात् उत्पत्ति का प्रसङ्ग इस प्राकृतिक घटना की ओर सङ्केत करता है । प्रकृति-परक व्याख्या के आधार पर विषय के सम्यगध्ययन से उपर्युक्त अर्थ सहज-रूप से निकाला जा सकता है ।

पुराणों ने सरस्वती तथा ब्रह्मा को पत्नी तथा पति के रूप में चित्रित किया है (मथुनौ) । यास्क ने मिथुन का भाव दो अभिप्रायों में किया है । उनमें से एक दैवी तथा दूसरा भौतिक अथवा सांसारिक प्रसङ्ग में है । सूर्य तथा उषा प्रथम कोटि में परिगणित हैं तथा पति तथा पत्नी दूसरी कोटि में आते हैं । ब्रह्मा तथा सरस्वती की जो पौराणिक उपकथा है, वह तद्वत् वैदिक उपकथा में सन्निहित है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि वैदिक एवं पौराणिक मिथुन के अर्थ में महान् अन्तर है । यास्क का कथन है कि जब उषा के साथ सूर्य उत्पन्न हुआ, तब सब देवों ने सम्पूर्ण संसार को देखा ।[10] यह मिथुन दैवी हैं, यह साथ-साथ रहता है तथा यह एक दूसरे के आश्रित है । यह अर्थ शब्द-निष्पत्ति से स्वतः स्पष्ट है : मिथुन=$\sqrt{}$मि+थु+नी<मिथुन; or$\sqrt{}$मि+थ्+$\sqrt{}$क्न् । ब्रह्मा तथा सरस्वती के सन्दर्भ में यह मिथुन अनुपयुक्त है, क्योंकि तदनुसार यह मिथुन स्थायी-रूप से साथ-साथ नहीं रहता है । दूसरे यह मिथुन बहुत समय तक प्रसन्न नहीं है । तीसरी बात यह है कि यह मिथुन अन्ततोगत्वा वियुक्त हो जाता है । इसके विपरीत सांसारिक मिथुन, जो कष्टों एवं आपदाओं से परिपूर्ण है, सदैव साथ रहता है । सायण के अनुसार यह भावना मिथुन के पीछे निहित है (मिथ्+$\sqrt{}$ वन्) . यास्क लिखते हैं : **मेथतिराक्रोशकर्मा** ।

यास्क की व्याख्या के विपरीत 'मिथुन' के अन्य अनेक अर्थ हैं, जो इस समय प्रचलित हैं । वे दम्पति (मिथुन) एक दूसरे की इच्छानुसार रहते हैं । सामान्यतः एक दम्पति (मिथुन) के जीवन में सामञ्जस्य दिखाई देता हैं तथा केवल कुछ ही विपरीतावस्था में सामञ्जस्य का अभाव होता है । पौराणिक ब्रह्मा एवं सरस्वती के मध्य सर्वथा विपरीत भाव का चित्रण है । उनमें वैचारिक समन्वय नहीं दिखाई देता है, क्योंकि हम देखते हैं कि एक ओर ब्रह्मा सरस्वती की अभूतपूर्व सौन्दर्य पर नितान्त मोहित हैं तथा दूसरी ओर सरस्वती शान्त तथा अनिच्छुक है :

---

१०. निरुक्त, ७.२६

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरति मनः ।
अकामां चक्रमे सक्तः सकाम इति नः श्रुतम् ।।[११]

२. समस्या का समाधान :

अन्वेषण से ज्ञात होता है कि पुराणों में अनेक आलङ्कारिक वर्णन हैं । आलङ्कारिक वस्तुओं के वर्णन का समाधान उचित व्याख्या के विना नहीं हो सकता । इस कथन की पुष्टि के लिए हम कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत कर सकते हैं । **रामायण** में वर्णित है कि कौशल्या पुत्रेष्ठि के समय सम्पूर्ण रात्रि एक अश्व के साथ सोई । अश्व एक पशु है । यह पशु अपनी भौतिक सत्ता के विपरीत शक्ति का प्रतीक है ।[१२] वस्तुतः रानी ने अश्व की सङ्गति का आनन्द नहीं लिया, अपितु उस शक्ति के साध विभिन्न रूप से खिलवाड़ किया, जिसका प्रतीक अश्व है । इसी प्रकार पुराणों में वर्णित है कि इन्द्र ने पार्थिवी मरणशील स्त्री **अहल्या** की सङ्गति के आनन्द का भोग किया । अहल्या का अर्थ है—**अह्ना यम्यते, अहो यमति वा सा** अर्थात् अहल्या वह है, जो दिन के साथ व्यतीत हो । इस प्रकार यहाँ रात्रि अर्थ में तात्पर्य है । गोतम अहल्या के पति हैं । अब यहाँ इन्द्र के साथ गोतम का अर्थ जानना आवश्यक है । गोतम पृथिवी से निकलने वाली कृष्ण वर्ण की किरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन्द्र प्रकाश के प्रतीक हैं तथा चन्द्रमा दो पंख वाले पक्षी का प्रतिनिधित्व करता है । इसकी निम्नलिखति प्रकार से व्याख्या की जा सकती है ।

दिन में प्रकाश चारो ओर फैला हुआ होता है । रात्रि के आगमन पर यह ऊपर चला जाता है । इस प्रकार जब प्रकाश का देवता ऊपर चला गया, तब उसने चन्द्रमा की सहायता ली, जिसे आलङ्कारिक रूप से एक पक्षी कहा गया है । इस कथा को एक अन्य विधि के साथ वर्णित किया जा सकता है । रात्रि में (अहल्या) प्रकाश (इन्द्र) दो पक्षीय पक्षी (चन्द्रमा) के द्वारा पृथिवी (गोतम) पर प्रसृत होता है ।

इन दो उदाहरणों के आधार पर ब्रह्मा तथा सरस्वती की कथा को समझा जा सकता है । ब्रह्मा तथा सरस्वती की उपकथा का बीज **ऋग्वेद** में उपलब्ध होता है ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा अपने को विभिन्न रूपों में प्रकट करना चाहते थे । उनकी इच्छा '**काम**' कही गई है । यह काम मन से प्रभावित है ।[१३] वेदों तथा पुराणों में मन को प्रजापति कहा गया है ।[१३] इस कहावत को पुराणों में अत्यन्त प्रसिद्धि मिली है, फलतः कुछ ब्राह्मणों में मन को बहुशः प्रजापति

११. **भागवतपुराण**, ३.१२.२८

१२. श्रीअरविन्दो, **ऑन द वेद** (पाण्डिचेरी, १९५६), पृ० १०४-१०५

१३. ग्रीफिथ् की टिप्पणी **ऋग्वेद** ७.३: "The mind : meaning Prajapati."

कहा गया है : "**मनो वै प्रजापतिः** ।" यही प्रजापति अपने रेतस् (काम)को वाक् (सरस्वती) में निक्षिप्त करता है । कहीं-कहीं वाक् का तादात्म्य प्रजापति, विश्वकर्मा, सम्पूर्ण संसार तथा इन्द्र के साथ पाया जाता है ।[१४] **शतपथब्राह्मण** के सृष्टिविषयक आख्यान में कहा गया है कि जब प्रजापति सृष्टि के लिए इच्छुक थे, तब उन्होंने अपने मस्तिष्क से वाक् की सृष्टि थी । पुनः उससे जलों को उत्पन्न किया । यहाँ प्रजापति तथा वाक् के मध्य लैङ्गिक सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है[१५] । काठक-उपनिषद्[१६] में इसी को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त किया गया है :

"Prajapati was this universe. Vak was second to him. He associated sexually with her ; she became pregnant ; she departed from him ; she produced these creatures ; she again entered into Prajapati"

प्रजापति सृष्टि के स्रोत हैं तथा सृष्टि के पाँच तत्त्वों में से एक वाक् प्रजापति की महत्ता (greatness) की प्रतीक है ।[१७]

यहाँ भावार्थ उस प्रकार निकाला जा सकता है । प्रजापति ब्रह्मा के समकक्ष हैं । सरस्वती के गर्भाशय में जिस वीर्य (रेतस्) का आधान किया गया, वह प्रजापति की शक्ति है, जिसका उपयोग वाक् की उत्पत्ति के लिए किया गया । यहाँ एक अन्य सुसंयत मत प्रस्तुत किया जा सकता है कि कैसे मन से वाक् की उत्पत्ति होती है । अभिव्यक्तिकरण के पूर्व वाक् स्वतः मन है । मनस् तथा वाक् का पारस्परिक सम्बन्ध तथा समन्वय इस प्रकार जानना चाहिए । मनस् (मन) प्रथमतः 'रस' तथा 'बल' से सममात्रा में अवच्छिन्न रहता है (**रसबलसममात्रावच्छिन्नः**) । दोनों तत्त्वों की साम्यावस्था में सब वस्तु स्थिरावस्था में होती है, अत एव कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता है । जब थोड़ा सा बलाघात होता है, अर्थात् विचार के प्रकटीकरणार्थ जब इच्छा होती है, तब मन श्वास में परिणत हो जाता है । जब बलाघात तीव्र तथा तीव्रतर हो जाता है, तब वही श्वास वाक् में परिणत हो जाती है । इस मनोवैज्ञानिक आधार पर भी वाक् तथा मन का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, अर्थात् ये mind और speech ही हैं, जिन का पुराणों में ब्रह्मा के मनस् का सरस्वती (वाक्) के साथ एक सांसारिक प्रेम की परिणिति सी है ।

पुनः इस कथा को एक भिन्न प्रणाली से स्पष्ट कर सकते हैं । प्रत्यक्ष-रूप से

---

१४. ए० बी० कीथ, **द रिलीजन एण्ड फिलासोफी ऑफ द वेद एण्ड उपनिषद्स**, भाग २ (लण्डन, १९२५), पृ० ४३८

१५. जॉन डाउसन, **ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी** (लण्डन, १९६१), पृ० ३२९-३३०

१६. **वही**, पृ० ३३०

१७. वी० एस० अग्रवाल, 'क' प्रजापति, **जनरल ऑफ ओरिएन्टल इन्स्टीच्यूट**, भाग ८, न० १ (बड़ौदा, १९५८), पृ० १-४

इस उपकथा में ब्रह्मा तथा सरस्वती का वर्णन है। सरस्वती उषा से एक भिन्न देवी है। **ऋग्वेद** के एक मंत्र में दिखाया गया है कि जिस प्रकार एक लौकिक प्रेमी अपनी प्रेयसी का अनुगमन करता है, तद्वत् सूर्य दैवी उषा का पीछा कर रहा है।[१८] जिस प्रकार सरस्वती ब्रह्मा से सम्बद्ध है, उसी प्रकार उषा प्रजापति से सम्बद्ध है। इस सन्दर्भ में **ऐतरेय-ब्राह्मण** में निम्नलिखित प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है :

प्रजापतिः स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये रोहितमभूताभ्यैत्।[१९]

यहाँ उषा उस उषा से भिन्न है, जो सूर्य से उसकी प्रेयसी के रूप में सम्बद्ध है। **ऐतरेयब्राह्मण** की उषा प्रजापति के पुत्री के रूप में वर्णित है। इस सम्बन्ध की सङ्गति ब्रह्मा तथा सरस्वती से नहीं बैठती है। इसकी सङ्गति भिन्न प्रकार से बैठाई जा सकती है।

जब उषा आती है, तब वह देवों के स्वागतार्थ गीत (अर्चना) प्रस्तुतार्थ ऋषियों को जगाती है। उषा सूर्य के साथ आती है तथा सूर्य उषा को जन्म देता है। वैदिक-साहित्य में कहीं-कहीं प्रजापति तथा इन्द्र को सूर्य कहा गया है। इस प्रकार सूर्य एवं उषा को ब्रह्मा तथा सरस्वती के समकक्ष माना जा सकता है। साहित्य तथा कविकृति में प्रकाश को ज्ञान का प्रतीक माना गया है। प्रकाश सर्वप्रथम उषा से आता है। तदनन्तर सूर्य से आता है। सूर्य उषा को प्रेरित करता है तथा यह उत्प्रेरणा ज्ञान-उत्पत्ति-स्वरूप है। **ऐतरेयब्राह्मण** में सीतासावित्री अथवा सूर्यासावित्री को प्रजापति की पुत्री माना गया है।[२०]

कुछ विद्वान् इस कथा को एक भिन्न रूप में वर्णित करते हैं। निस्संदेहतः प्रजापति संसार एवं प्राणियों का पति (स्वामी) है। उसने इस जगत् को स्वात्मा से उत्पन्न किया है। प्रजापति का समन्वय सन्वत्सर तथा यज्ञ से भी पाया जाता है।[२१] सरस्वती के मूल में सृ धातु है, जिसका अर्थ गमन है। इस प्रकार सरस्वती वह है, जो सदैव गमन करने वाली है। वर्ष के रूप में प्रजापति अपनी नियन्तृ-शक्ति सरस्वती के माध्यम से परिभ्रमण करता है। जब प्रजापति का तादात्म्य यज्ञ से हो गया है, तब इस पौराणिक उपकथा के विषय की अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं, क्योंकि यज्ञ में वैदिक मंत्रों का विनियोग होता है। इस विनियोग में वाक् पत्नी-स्वरूप है, जो पति-रूप प्रजापति से मिलती है। पौराणिक काल में प्रजापति (वैदिक) का व्यक्तित्व ब्रह्मा

---

१८. ऋ० १.११५.२

१९. ऐ० ब्रा० ३.३३

२०. तै० ब्रा० २.३.१०

२१. तु० वी० वी० दीक्षित, 'ब्रह्मन् एण्ड सरस्वती', **द पूना ओरिएण्टलिस्ट**, भाग ८ (१९४३), पृ० ६६

के व्यक्तित्व में मिल गया है। यह ब्रह्मा पौराणिक त्रिक् में सर्वोपरि हैं। समयानुसार वाक् में भी परिवर्तन हुआ और इसका नाम सरस्वती पड़ गया। यदि यह पौराणिक कथा इस प्रकाश में देखी जाये, तब तो उससे सम्बद्ध अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो जायेंगी। सायणाचार्य ने युक्त ही कहा है :

"**कामं यथेच्छं कृण्वाने कुर्वाणे पितरि प्रजापतौ युवत्यां दुहितर्युषसि दिवि वा। 'दिवमित्यन्ये'[२२] इति हि ब्राह्मणं प्रदर्शितम्। मध्या तयोर्मध्येऽन्तरिक्षमध्ये वा अमीके समीपे यत्कर्त्वं कर्माभवत् मिथुनीभावाख्यं तदानीं मनानक् अल्पं रेतं जहतुः व्यक्तवन्तौ। किं कुर्वाणावीति तत्राह। वियन्तौ परस्परमभिगच्छन्तौ। प्रजापतिना सानौ समुच्छ्रिते स्थाने सुकृतस्य यज्ञस्य[२२] योनौ निषिक्तमासीदित्यर्थः। ततो रुद्र उत्पन्न इत्यर्थः।**"

वैदिक तथा पौराणिक साहित्य रहस्यों तथा प्रतीकों से भरे पड़े हैं। तत्तत् साहित्य की वस्तुएँ उस रूप में वर्णित हैं, क्योंकि उन-उन साहित्य में विचारों की धनाढ्यता है। विचारों की धनाढ्यता के कारण प्रकृत सन्दर्भ को कई दृष्टियों से देखना होगा। कुछ विद्वानों के मतानुसार इस उपकथा में ज्योतिष-विद्या-सम्बन्धी घटनाओं का मेल है। उदाहरण के रूप में यहाँ 'procession of vernal equinox' है, जो पाक्षिक संवत्सर का प्रारम्भ है। प्रजापति का व्यभिचार नये वर्ष की विपरीत गति (retrograde motion of new year) का प्रतीक है। वर्ष (प्रजापति) पुनर्वसु से मृगशिरस् को चला गया। इसी को आलङ्कारिक रूप से व्यभिचार की संज्ञा दी गई है।[२३]

इसी वैदिक उपकथा का वर्णन यहाँ पौराणिक परिवेश में हुआ है। हमें इस कथा का समाधान ऊपर के व्याख्यानों के प्रकाश में देखना होगा।

इस उपकथा के द्वारा हमें एक सीख भी मिलती सी दीखती है। यहाँ हम **अथर्ववेद** का एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। **अथर्ववेद** में इन्द्र तथा मरुतों को कृषकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह उदाहरण कृषि-कर्म को उत्तम घोषित करता है।[२४] इससे हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि अपने वंश तथा वर्ण का अभिमान छोड़ कर कृषि-कर्म करने में लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जब ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार किया, तब उन्होंने अपनी तपस्या की महत्ता खो दी। फलतः उन्होंने तपस्या की। इससे शिक्षा मिलती है कि यदि किसी से कभी कोई त्रुटि हो जाय, तो उसका परिष्कार करना अथवा पश्चाताप करना अनुचित नहीं है।

---

२२. तु० सायण की व्याख्या ऋ० १०.६१.६

२३. वी० वी० दीक्षित, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ६६

२४. तु० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, **अथर्ववेद-सुबोध भाष्य**, भाग २ (सूरत, १९६०), पृ० ६१

पुराणों में कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने मुख से सब वेदों एवं शास्त्रों को उत्पन्न किया। सरस्वती सभी देवियों में एक प्रधान देवी है तथा वह सभी विद्याओं एवं विज्ञानों का प्रतिनिधित्व करती है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए ही पुराणों में उसके दो हाथों में पुस्तक तथा कमण्डलु को प्रस्थापित किया गया है। सभी ज्ञान वेदों से समुद्भूत हैं तथा वेद ब्रह्मा के मुख का प्रतिनिधित्व करते हैं। विद्या-देवी के रूप में सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री है। प्रकृत सन्दर्भ में इसका अर्थ यह हुआ कि वह वाक् के रूप में वेदों (ब्रह्मा के मुखों) से उत्पन्न हुई है। पुराणों में ब्रह्मा एवं सरस्वती के मध्य प्रेम-वर्णन पूर्णरूप से प्रतीकात्मक है, क्यों सरस्वती पवित्र ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है, न कि अशुद्ध ज्ञान का।[२५] हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान की देवी के रूप में सरस्वती पवित्र ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है। यह उपकथा अरसिकता को जन्म देती है। यही कारण है कि कालान्तर में ब्रह्मा को स्वतः अपनी पुत्री के पति-रूप में चित्रण करने का विचार त्याग दिया गया।

---

२५. वी० वी० दीक्षित, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ६७

—१२—

ऋग्वेद में देवियों का त्रिक्

भारतीय पुराण-कथा में सरस्वती का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस पुराण-कथा में इस देवी के साथ अनेक विचित्रताएँ संयुक्त हैं, जो उसके पेचीदे चरित्र के विकास में एक-एक करके जुड़ी हैं। फलतः इस देवी के चरित्र ने भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों का ध्यानाकर्षण किया है तथा उन्होंने अपने-अपने ढंग से इस के अपूर्व चरित्र पर विचार किया है।

यह बात सत्य है कि **ऋग्वेद** में इस देवी का मूर्तिकरण नहीं हुआ है, जैसा कि अन्यत्र पुराणों तथा तदेतर साहित्य में उपलब्ध होता है। वह वैदिकेतर साहित्य में मुख्यतः एक देवी के रूप में वर्णित है। **ऋग्वेद** में भी मुख्यतः एक देवी के रूप में ही चित्रित है, परन्तु कुछ मंत्र उसे नदी के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं। **ऋग्वेद** में देवी के रूप में उस की मूर्तिवत्ता कहीं-कहीं अभिव्यक्त होती है, परन्तु यह मूर्तिवत्ता अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। नदी-रूप में उस की मूर्तिवत्ता तो है ही, देवी के रूप में उस की मूर्तिवत्ता की कल्पना हमें इस बात का विश्वास दिलाती है कि ऋग्वेदिक ऋषि इस के सूक्ष्म रूप से सन्तुष्ट नहीं थे और उसे शनैः शनैः मूर्तिमान् रूप दे रहे थे।[1] यह मूर्तिमान् रूप सरस्वती के भौतिक रूप को दिए गये हैं, जो उस के नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैदिक देवियों एवं देवों की परम्परा में उत्पत्ति तथा विकास की अनुपम छटा देखने को मिलती है। वहाँ सर्वप्रथम अनेक देवियों तथा देवों की उत्पत्ति-क्रम में उन का समुद्भव दिखाई देता है तथा तत्पश्चात् एक का दूसरे में मिश्रण हो जाता है। यदि किसी का अस्तित्व बचा भी रह जाता है, तो वह निरस रूप (steriotyped form) में रहता है। सरस्वती के चरित्र के विषय में नितान्त विपरीत बात दृष्टिगोचर होती है। उस के चरित्र में आदितः निरन्तर परिवर्तन तथा विकास की दशा लक्षित होती है। एक ऋग्वैदिक देवी के रूप में वह तीन देवियों का त्रिक्[2] बनाती है, जिसमें इला तथा भारती सम्मिलित हैं। वाणी के तीन रूप प्रकल्पित हैं तथा वे मध्यमा, वैखरी तथा पश्यन्ती हैं। ये तीनों देवियाँ इन तीनों वाणियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये मध्यमा आदि एक मनुष्य में अन्ततः एक वाणी की तीन अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। संस्कृत

---

१. तु० **सुयमा** (ऋ० ९.८१.४); **सुभ्रा** (वही, ५.४२.१२; ७.४६.६, ९६.२); **सुपेशस्** (वही, ९.५.८)

२. **वही,**

में तीन लोकों (**रजांसि**) की कल्पना पाई जाती है तथा वे तीन लोक पृथिवी, आकाश तथा द्युलोक हैं। ये तीनों देवियाँ इन तीनों लोकों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं।

ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों में सरस्वती का आवाहन विभिन्न देवियों के साथ हुआ है। यह आवाहन सामान्य रूप में है तथा अदिति[३], गुङ्गू[४], सिनीवाली[५], राका[६], इन्द्राणी[७], वरुणानी[८], ग्नाः[९], पृथिवी[१०], पुरन्धी[११] इत्यादि के साथ हुआ है। सरस्वती का विशेष सम्बन्ध इला तथा भारती से है। इन्हीं से ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक् है, जो वैदिकेतर से भिन्न है।

इस त्रिक् पर सम्यक् विचार करने के पूर्व यह अपेक्षित प्रतीत होता है कि उन देवियों पर भी विचार कर लिया जाये, जिन के साथ सरस्वती का गहरा सम्बन्ध है।

सरस्वती का वर्णन **ऋग्वेद** में अदिति, गुङ्गू, सिनीवाली, राका, इन्द्राणी, वरुणानी, पृथिवी, इत्यादि के साथ नितान्त स्वतंत्र रूप से हुआ है। पुरन्धी, धीः तथा ग्नाः के साथ उस का अपेक्षाकृत सम्बन्ध गहरा है। **ऋग्वेद** के एक मंत्र में सरस्वती का धीः के साथ वर्णन उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सरस्वती सौभाग्य-प्रदान करे तथा धीः के साथ पूजकों की वाणियों का श्रवण करे : "**शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।**"[१२] इसी प्रकार पुरन्धी के साथ भी स्तुति पाई जाती है : "**शृण्वन् वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या।**"[१३] इस प्रकार सरस्वती का आवाहन धीः के साथ दो बार हुआ है। इस से सरस्वती तथा धीः का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है। धीभिः का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया गया है। सायण ने इस का अर्थ "**स्तुतिभिः कर्मभिर्वा**", ग्रीफिथ् "पवित्र विचार" अथवा "चेतन विचार", (Holy thoughts or Devotions personified) और विल्सन "पवित्र आचार" (holy

---

३. ऋग्वेद, १.८९.३; ७.३९.५; १०.१५.१
४. वही, २.३२.८
५. वही, २.३२.८; १०.१८४.२
६. वही, २.३२.८; ५.४२.१२
७. वही, २.३२.८
८. वही, २.३२.८
९. वही, ५.४६.२; ६.४९.७
१०. वही, ८.५४.४
११. वही, १०.६५.१३
१२. वही, ७.३५.११
१३. वही, १०.६५.१३

rites) किया है । धीः धर्मनिष्ठा अथवा भक्ति की देवी प्रतीत होती है और यह सरस्वती के साथ उसी प्रकार सम्बद्ध है, जिस प्रकार पुरन्धी है, जो पूजकों के वचनों को सुनने के लिए प्रार्थित है ।[१४] **ऋग्वेद** में ग्नाः के साथ सरस्वती का घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि वह उन में से एक है । इस के अतिरिक्त **ऋग्वेद** के एक मंत्र (५.४६.२) में ग्नाः का वर्णन अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुत्, विष्णु, नासत्या, रुद्र, पूषन् तथा अन्य देवों (**देवाः**) के साथ हुआ है । सम्भवतः ग्नाः बहुवचन में स्त्री का वाचक है । यह सामान्यतः सभी देवों की स्त्रियों तथा मंत्र में परिगणित देवों की स्त्रियों का विशेष-रूपक से वाचक प्रतीत होता है । **ऋग्वेद** का एक अन्य मंत्र सरस्वती को ग्नाः से प्रगाढ रूप से सम्बद्ध करता है। इस मंत्र में सरस्वतो से प्रार्थना की गई है कि वह पूजक को शरण तथा परम सुख प्रदान करे : **"ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्** (ऋ० ६.४९.७)

१. ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक् :

देवियों एवं देवों के त्रिक् का इतिहास बड़ा प्राचीन है। यह त्रिक् वैदिक तथा वैदिकेतर दोनों साहित्यों में उपलब्ध होता है तथा इस त्रिक् का सम्बन्ध देवियों तथा देवों से है । ऊपर ऋग्वैदिक देवियों के त्रिक् की ओर संकेत किया गया है । वेद में ही देवों का त्रिक् अग्नि, वायु अथवा इन्द्र तथा सूर्य से बनता है। जिस प्रकार सरस्वती, इला तथा भारती के स्थान भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार वैदिक देव-त्रिक् के स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं । यास्काचार्य इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं :

"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्ष-स्थानः । सूर्यो द्युस्थानः ।" (**निरुक्त**, ७ २)

वैदिक त्रिक् की भाँति पौराणिक देव-त्रिक् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश से बनता है[१५] तथा देवियों का सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती या गौरी से बनता है ।[१६]

प्रकृत सन्दर्भ का ध्यान रखते हुए ऋग्वैदिक देवी-त्रिक् का वर्णन किया जा रहा है । **ऋग्वेद** में इला दूध तथा घी की बलि का चेतन (personified) रूप है । इस प्रकार इला उस धन का प्रतिनिधित्व करती है, जो गौ से प्राप्त होता है । वह उर्वरता (fertility) की भी देवी समझी जाती है । **ऋग्वेद** में बहुत थोड़े से मंत्र हैं, जिन में इला की स्तुति अकेले की गई है, अन्यथा वह सरस्वती एवं भारती के साथ वर्णित है । सरस्वती की भाँति इला एक दुधारु गाय (milck-cow) है ।[१७] इला

१४. **वही**, १०.६५.१३

१५. डोनाल्ड ए० मेकेंजी, **इण्डियन मिथ एण्ड लेजेण्ड** (लण्डन, १९१३), पृ० १५१

१६. **वही**, पृ० १५०

१७. **ऋ०**, ३.५५.१३

शाश्वत् फलों को धारण करती है, जिस में ऋतुओं का व्यवधान नहीं होता है।[१८] एक दुधारु गाय के रूप में वह पशुओं में सर्वोत्तम है, अत एव वह पशु-समुदाय की माँ कही जाती है।[१९] कहा जाता है कि उस के हाथ सतैल हैं। वह जिस गृह में निवास करती है, वहाँ अग्नि शत्रुओं से रक्षा करता है और शाश्वत् कल्याण को लाता है।[२०] हाथों के समान उस के पैर भी तैलयुक्त हैं।[२१] यही कारण है कि उस से यज्ञ-पुरोडाश पर बहने के लिए प्रार्थना की गई है।[२२]

इला की भाँति भारती एक यज्ञ की देवी है।[२३] वेदों में सामान्यतः वह स्वतंत्र रूप से आती है, परन्तु कुछ स्थानों पर सरस्वती के साथ आहूत है। इस देवी के व्यक्तित्व के साथ कुछ अभूतपूर्व विचित्रताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। वेदों में तो वह सर्वथा स्वतंत्र है तथा सरस्वती से भिन्न एक देवी है, परन्तु वैदिकेतर काल में उस की वैयक्तिक सत्ता सरस्वती में घुल-मिल सी गई है। दोनों के नाम प्रायः एक दूसरे के पर्याय हैं। इस सामञ्जस्य का बीज स्वतः **अथर्ववेद** में उपलब्ध होता है, जहाँ न केवल सरस्वती तथा भारती के, अपितु इला के भी व्यक्तित्व का पारस्परिक सामञ्जस्य दृष्टिगोचर होता है।[२४]

श्रीअरविन्दो के अनुसार इला, सरस्वती और भारती क्रमशः दृष्टि, श्रुति तथा सत्य चेतना की महानता का प्रतिनिधित्व करती हैं।[२५]

ये तीनों देवियाँ वाणी के तीन रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। वेदों में सम्भवतः यह वर्णित नहीं है कि कौन देवी किस वाग्रूप का प्रतिनिधित्व करती है। एतदर्थ हमें सायण जैसे व्याख्याकारों के भाष्य का सहारा लेना पड़ता है। भारती का एक अन्य नाम मही भी है। सायण का स्पष्ट कथन है कि ये तीनों देवियाँ स्वतः वाणी के तीन रूप हैं। उन्हों ने भारती को '**द्युस्थाना वाक्**' माना है।[२६] उन्हों ने उसे

---

१८. **वही**, ४.५०.८

१९. **वही**, ५.४१.१९

२०. **वही**, ७.१६.८

२१. **वही**, १०.७०.८

२२. **वही**, १०.३६.५

२३. तु० जेम्स हेस्टिंग्स, **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स**, भाग १२ (न्यूयार्क, १९५६), पृ० ६०७

२४. **अथर्ववेद**, ६.१००.१ (तु० **तिस्रः सरस्वतीः**)

२५. श्रीअरविन्दो, **ऑन द वेद** (पाण्डिचेरी, १९५६), पृ० ११०

२६. सायण-भाष्य ऋ० १.१४२.९ "**भारती भरतस्यादित्यस्य सम्बन्धिनी द्युस्थाना वाक्**"

'रश्मिरूपा'[२७] कहा है। इसी प्रकार उन्हों ने सरस्वती को **'माध्यमिका वाक्'**[२८] माना हैं। उन्हों ने सरस्वती की इस रूप में व्याख्या करते हुए उसे **'स्तनितादिरूपा'** कहा है, जिस का स्थान अन्तरिक्ष हैं। पुनः सरस्वती की व्याख्या करते हुए कहते हैं: **"सरस्वती सरः वागुदकं वा। तद्वत्यन्तरिक्षदेवता तादृशी।"**[२९] स्तनित या ध्वनि वायु द्वारा बाह्य है, अत एव सरस्वती वायुरूपा है अथवा वायु की नियन्तृ है।[३०] अन्यत्र अनेकशः उसे 'माध्यमिका वाक्' कहा गया है।[३१] इला पार्थिवी वाणी (**पार्थिवी प्रैषादिरूपा**) है।[३२] तीनों देवियों को तीन वाणियाँ बताते हुए उन्हें तीनों वाणियों की अधिष्ठातृ देवियाँ भी माना गया है, तथा वह कथन वेद-सिद्धान्तानुगत भी है:

"एतास्तिस्त्रः त्रिस्थानवागभिमानिदेवताः।"[३३]

ऋग्वेद में इला, सरस्वती तथा भारती का अग्नि से समन्वय भी उपलब्ध होता है। **ऋग्वेद** में उन्हें **'अग्निमूर्तयः'**[३४] कहा गया है, इस कथन से ऊपर का भाव स्वयमेव स्पष्ट है। अग्नि तेजस् (brilliance = intelligence) का प्रतीक है। पृथिवी पर स्थित अग्नि सूर्य के रूप को अभिव्यक्त करता है तथा वह सूर्य वस्तुतः द्युलोक-वासी है। भारती का सूर्य[३५] तथा मरुतों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।[३६] यही कारण है कि भारती को **'मरुत्सु भारती'** कहा गया। मरुत् आँधी-पानी तथा प्रकाश के देवता हैं तथा वे अन्तरिक्ष-स्थानीय हैं। मरुतों के सम्बन्ध से भारती अन्तरिक्ष स्थानीय हुई, परन्तु वास्तविक रूप से वह द्युलोक स्थानीय है। वस्तुतः सरस्वती ही अन्तरिक्ष स्थानीय है और यदि दोनों को ग्रन्तरिक्ष स्थानीय प्रदर्शित किया गया है, तो इस प्रकार वाक् का एकत्व भिन्नता होते हुए भी प्रदर्शित है। यह दृष्टान्त क्रमशः हमें वाक् की तादात्म्यता की ओर ले जा रहा है। अग्नि को बीच में डालकर ज्ञान के महा स्रोत 'सूर्य' से उन को समुद्भूत जानना चाहिए।

---

२७. **वही**, २.१.११

२८. सायण-भाष्य, **वही**, १.१४२.९, **सरस्वती। सर इत्युदकनाम तद्वती स्तनितादिरूपा माध्यमिका च वाक्"**

२९. **वही**, १.१८८.८

३०. **वही**, २.१.११, **"सरस्वती सरणवान् वायुः। तत्सम्बन्धिनी एतन्नियामिका माध्यमिका"**

३१. तु० **वही**, २.३०.८; ५.४३.११; ७.९६.२; १०.१७.७, ६५.१२

३२. **वही**, १.१४२.९

३३. **वही, १.१४९.९**

३४. तु० विल्सन की टिप्पणी **वही, १.१३.९**

३५. **ऋ०** १.१४२.९

३६. **वही**, १.१४२.९

इला, सरस्वती तथा भारती भूः, भुवः तथा स्वः की प्रतिनिधिकारिणी देवियाँ हैं, अत एव वे तत्तत्स्थानों की वाक् हैं।[३७] इन देवियों को एक दूसरे नाम से भी जाना जाता है। वाणी के तीन अन्य भेद भी हैं, जिन्हें पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी कहा गया है। तीनों देवियाँ में से भारती पश्यन्ती है, सरस्वती मध्यमा है तथा इला वैखरी है।[३८] वही नादात्मिका वाक् परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूपों में प्रसिद्ध है। अपने मूल स्रोत-रूप में वाक् परा है। जब वह सूक्ष्म-रूप से हृदयगत है, तब वह पश्यन्ती है, क्योंकि उस अवस्था में वह केवल योगियों द्वारा ही जानी जा सकती है। जब वह हृदय के मध्य में उत्पन्न होकर स्पष्ट तथा ज्ञातव्य हो जाती है, तब मध्यमा है। जब वह तालु, कण्ठ, ओष्ठ आदि मुखस्थ अवयवों से बहिर्गत होती है, तब वैखरी कही जाती है।[३९] वाणी के ये चतुर्विध रूप एक मनुष्य में वाणी के प्रकटीकरण की चार अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

एक अन्य मत के अनुसार इला, सरस्वती तथा भारती के तीनों लोकों के सम्बन्ध को एक भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है। तदनुसार इला को इरा जानना चाहिए, जिस इरा का अर्थ वेदों में इस प्रकार किया गया है : "···any drinkable fluid, a draught (especially of milk), refreshment, comfort, ejnoyment,[४०] etc". तब वाक् के रूप में इला का अर्थ पार्थिव ज्ञान से है, जो हमें भोजन, पेय, विश्राम और जीवन की आवश्यकताओं को देता है तथा जो हमें जीविकोपार्जन में सहायता प्रदान करता है। अन्तरिक्ष स्थानीय वाक् के रूप में सरस्वती धर्म-निष्ठा के ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है, जो मनुष्यों के लिए स्वर्ग

---

३७. डॉ० सूर्य कान्त, 'सरस, सोम एण्ड सीर', **ए० बी० ओ० आर०,** आई०, **भाग ३८** (पूना, १९५८), पृ० १२७-१२८

३८. सायण-भाष्य ऋ० १.१६४.४५

"परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चत्वारीति। एकैव नादात्मिका वाक् मूलाधारादुदिता सती परेत्युच्यते। नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात् सैव हृदयगामिनी पश्यन्ती इत्युच्यते योगिभिर्द्रष्टुं शक्यत्वात्। सैव बुद्धि गता विवक्षां प्राप्ता मध्यमेत्युच्यते। मध्ये हृदयाख्ये उदीयमानत्वात् मध्यमा वाक्। अथ यदा सैव वक्त्रे स्थिता ताल्वोष्टादिव्यापारेण बहिर्निर्गच्छति तदा वैखरी इत्युच्यते,"; तु० विल्सन-भाष्य, **वही,** १.१६४.४५ (**चत्वारि वाक्यपरिमिता पदानि**)

३९. **वही,** १.१६४.४५

४०. मोनियर विलियम्स, अ **संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी** (आक्सफोर्ड, १८७२), पृ० १४१

तथा उस के आनन्द को जीतता है। भारती स्वर्गीय वाणी का ज्ञान है, जो निर्वाण लाता है।[४१]

सरस्वती पौराणिक काल में महालक्ष्मी तथा दुर्गा के साथ त्रिक बनाती है। यहाँ पार्वती के स्थान पर दुर्गा को प्रदर्शित किया गया है, जो दुर्गा शक्ति की अवतार है। सामान्यतः वैदिकेतर काल में लक्ष्मी ही त्रिक बनाती हैं, परन्तु पुराणों में कहीं-कहीं महालक्ष्मी को लक्ष्मी के स्थान पर रखा गया है। यहाँ महालक्ष्मी का अर्थ लक्ष्मी के अर्थ से भिन्न है। यह महालक्ष्मी परमात्मा के समान स्त्री-शक्ति की बोधिका है तथा इसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सरस्वती, अम्बिका आदि की उत्पादिका माना गया है।[४२]

---

४१. डॉ० सूर्य कान्त, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२८

४२. विस्तृत ज्ञान के लिए द्र० **ब्रह्माण्डपुराण** ४.४०.५ तथा आगे। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि सर्वप्रथम एक दम्पति की उत्पत्ति हुई, जो एक स्त्री तथा पुरुष के रूप में थी। इसकी उत्पत्ति महालक्ष्मी के कारण हुई। इस उत्पत्ति के लिए महालक्ष्मी ने सबसे पहले तीन अण्डों को उत्पन्न किया। उन तीन अण्डों में से पौराणिक त्रिक की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा श्री के साथ, शिव सरस्वती के साथ तथा विष्णु अम्बिका के साथ उत्पन्न हुए। वेदों में कहा गया है कि सर्वप्रथम जब परमात्मा सृष्टि करना चाहते थे, तो उन्होंने देवों को पैदा किया तथा उन देवों ने परमात्मा की इच्छानुसार सृष्टि का विस्तार किया। इसी प्रकार यहाँ महालक्ष्मी परमात्मा की महाशक्ति जान पड़ती है, जो सृष्टि के विस्तार के लिए स्त्री-रूप में प्रसिद्ध है।

ब्राह्मणों में सरस्वती का स्वरूप

१. वाणी तथा उनका परिचय :

वैदिकेतर काल में वाणी का वैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अक्षर, शब्द, वाक्य, साहित्य तथा ध्वनि ये सभी वाणी के क्षेत्र में आते हैं। इसी वाणी को वाक्, गिरा आदि नामों से जाना जाता है। **ऋग्वेद** में वाणी के लिए वाक् का प्रयोग मिलता है तथा गीः का भी प्रयोग मिलता है। वाणी की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मत-भेद है। एक विचार-धारा के अनुसार इस वाणी का स्रोत मनुष्य है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विचार-विनिमय के माध्यम से इस का प्रचार एवं प्रसार होता रहा है। एक दूसरे विचार-धारा के अनुसार इस वाणी की उत्पत्ति दैवी है।[१] वाणी भाषा के रूप में विकसित होती है। भाषा-वेत्ता तदर्थ कतिपय सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। उन सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त मुख्यरूप से भाषा-विकास को दो भागों में विभक्त करता है[२] (१) भाषा ईश्वर द्वारा बनाई गई है; (२) भाषा विकास का परिणाम है। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार भाषा पृथ्वी पर ईश्वर की कृपा के परिणामस्वरूप आई। इस के विपरीत दूसरा मत इस का खण्डन करता है। इस का कथन है कि भाषा पृथिवी पर मनुष्यों के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप जन्मी तथा इस की उत्पत्ति तथा विकास में ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। धार्मिक ग्रंथ प्रथम सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं तथा ऐसे ग्रंथों में **ऋग्वेद** तथा **ब्राह्मण** ग्रंथ प्रमुख हैं। नीचे ऋग्वैदिक तथा ब्राह्मणिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

२. ऋग्वैदिक सिद्धान्त :

ऋग्वेद—(१०.७१) में वाक् स्वयं अपने स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। इस सूक्त में ११ मंत्र हैं तथा इस सूक्त के प्रथम चार मंत्रों में वाणी के उत्पत्ति का वर्णन है। एक मंत्र में वर्णित है कि बृहस्पति प्रथम वाक् है तथा उस से अन्य पदार्थों के लिए अन्य शब्दों की उत्पत्ति हुई :

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषा श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेरणा तदेषां निहितं गुहाविः॥[३]

---

१. मैक्स मूलर, **साइन्स ऑफ लैंग्वेज** (वाराणसी, १९६१), पृ० ४

२. आई० जे० एस० तारापोर वाला, **एलिमेण्ट्स ऑफ द साइन्स ऑफ लैंग्वेज** (कलकत्ता, १९५१), पृ० १०-११

३. **ऋग्वेद**, १०.७१.१

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बृहस्पति ने सर्वप्रथम वाक् की उत्पत्ति की। दूसरे मंत्र में कहा गया है कि बुद्धिमानों ने (wise men) वाक् की रचना की : **"यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत"**।[४] एक दूसरा मंत्र यह उद्घाटित करता है कि कैसे सांसारिक प्रयोग के लिए वाणी की प्राप्ति हुई। तदर्थ मंत्र में उल्लिखित है कि बुद्धिमानों ने वाणी को यज्ञ के माध्यम से प्राप्त किया। वाणी की प्राप्ति में पूर्ण श्रेय केवल उन्हीं को नहीं है, अपितु ऋषियों को भी है, जिन्होंने सर्वप्रथम वाणी को प्राप्त किया तथा उस के व्यापक प्रयोग के लिए बुद्धिमानों को दे दिया :

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दंऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥[५]

इस ऋग्वैदिक प्रमाण से स्पष्ट है कि वाक् दैवी है, अर्थात् उस की उत्पत्ति दैवी है। ऋषियों ने उसे प्राप्त कर बुद्धिमानों को दिया। इन लोगों ने ज्ञान अथवा **वेद** के रूप में इस वाणी का अध्ययन किया। अन्त में वाणी सामान्य जन को मिली।[६] निम्न-लिखित मंत्र में वाणी का रहस्योद्घाटन है :

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥[७]

३. ब्राह्मणिक सिद्धान्त :

ब्राह्मण ग्रंथ अनेकशः वाणी की दिव्यता का वर्णन करते हैं। वाणी की दिव्यता इस से भी स्पष्ट है कि वह देवों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। इसी वाणी ने वेदों को जन्म दिया तथा इस के अन्दर सम्पूर्ण संसार निहित है : **"वाचा वै वेदाः सन्धीयन्ते वाचा छन्दांसि···वाचा सर्वाणि।"**[८] वाक् को माँ तथा श्वास (प्राण) को उस का पुत्र कहा गया है : **"वाग् वै माता प्राणः पुत्रः।"**[९] इस से स्पष्ट है कि वाक् अत्यन्त शक्ति-शालिनी है तथा संसार को उत्पन्न करने में सक्षम है, परन्तु यह संसार साक्षात् उस से समुत्पन्न नहीं जानना चाहिए। इस सन्दर्भ में उल्लिखित है कि वह प्रजापति से प्रगाढ रूप से सम्बद्ध है। वह प्रजापति संसार को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार बृहस्पति सर्वप्रथम वाक् को उत्पन्न करता है तथा वह वाक् का स्वामी है। यहाँ बृहस्पति तथा प्रजापति दोनों को वाक् से सम्बद्ध किया गया है। वेदों में बृहस्पति तथा प्रजापति दोनों भिन्न-भिन्न देव हैं, परन्तु यहाँ दोनों का तादात्म्य लक्षित होता है, क्योंकि दोनों वाक्

---

४. वही, १०.७१.२
५. वही, १०.७१.३
६. विलसन की टिप्पणी वही, १०.७१.३
७. वही, १०.७१.४
८. ऐतरेय-आरण्यक, ३.१.६
९. वही, ३.१.६

के पति हैं तथा दोनों का उत्पत्ति से सम्बन्ध है। बृहस्पति मंत्रों का स्वामी है। उपनिषदों में उसे ब्रह्मन् कहा गया है, जो मंत्रों का अधिष्ठाता है। वाचस्पति[१०] वाक् का स्वामी अथवा वाणी-स्वरूप है तथा **ब्राह्मणों** में यह बारम्बार आया है। यह वाचस्पति बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति तथा ब्रह्मन् का पर्याय है।

वाक् का तादात्म्य कभी-कभी जलों से पाया जाता है। ये संसार की उत्पत्ति के प्रथम तत्त्व हैं। प्रजापति जब सृष्टि करना चाहते थे, तो सर्वप्रथम उन्होंने जलों को उत्पन्न किया। तदनन्तर अन्य वस्तुएँ उनसे उत्पन्न हुईं। वाक् इस प्रकार जलों की प्रतिनिधित्व करती है तथा वह उत्पत्ति-कर्त्ता की इच्छा है, क्योंकि उसकी इच्छा वाणी (वाक्) में प्रस्फुटित हुई है।[११] ऊपर वाक् का जलों से तादात्म्य दिखाया गया है। वेदों में सरस्वती जल तथा देवी-दोनों के रूपों को धारण करती है। वह सर्वप्रथम एक नदी थी, परन्तु कालान्तर में देवी बन गई। देवी के रूप में भी वह जल का प्रतिनिधित्व करती है। वेदों में उसे 'बादलों में सरस्वती' कहा गया है। इस प्रकार वह माध्यमिका वाक् है, जिसमें जल तथा विद्युत् का भाव सन्निहित है।

कभी-कभी वाक् का तादात्म्य प्रजापति, विश्वकर्मा, सम्पूर्ण संसार तथा इन्द्र से प्राप्त होता हैं।[१२] **शतपथब्राह्मण** में एक कथा वर्णित है, जिसमें प्रजापति को सृष्टि के लिए इच्छुक प्रदर्शित किया गया है। उसने इस स्थिति में अपने मस्तिष्क से वाक् को उत्पन्न किया तथा पुनः उससे जलों को उत्पन्न किया। इस सन्दर्भ से उनमें लैङ्गिक सम्बन्ध था।[१३] यह प्रसङ्ग काठक-उपनिषद् में भी आया है : "Prajapati was this universe. Vach was a second to him. He associated sexually with her; she became pregnant; she departed from him; she produced these creatures. She again entered into Prajapati."[१४]

इस प्रकार प्रजापति सृष्टि का स्रोत है और वाक् सृष्टि के पाँच तत्वों में से एक हैं एवं वह प्रजापति की महत्ता को सूचित करती है।[१५] हमने पहले 'सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति', 'सरस्वती का पौराणिक नदी-रूप' तथा 'पुराणों में सरस्वती की

१०. **ऐतरेयब्राह्मण**, ५.२५; **शतपथब्राह्मण**, ४.१.१.९; ५.१.१.१६; **तैत्तिरीय-ब्राह्मण**, १.३.५.१; ३.१२.५.१; **तैत्तिरीय-आरण्यक**, ३.१.१ इत्यादि।

११. ए० बी० कीथ, **द रिलीजन एण्ड फिलासोफी ऑफ द वेद एण्ड उपनिषद्, भाग २** (लण्डन, १९२५), पृ० ४३८

१२. **वही**, पृ० ४३८

१३. जॉन डाउसन, **ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी** (लण्डन, १९६१), पृ० ३२९-३३०

१४. **वही**, पृ० ३३०

१५. वी० एस० अग्रवाल, 'क' प्रजापति, **जर्नल ऑफ बड़ौदा इन्स्टीच्यूट**, भाग ८, न० १ (बड़ौदा, १९५८), पृ० १-४

प्रतिमा' नामक शीर्षकों में सरस्वती को स्थान-स्थान पर प्रकृति का रूप दिया है। इस प्रकार वह सृष्टि करने वाली है। सरस्वती से सृष्टि दो प्रकार से हो सकती है। वह देवी-रूप से अपने 'प्रकृति' नामक चरित्र से सृष्टि करती है अथवा जल द्वारा सृष्टि करती है। जब वाक् को जल प्रदर्शित किया गया है, तब इस से सरस्वती की वाक् के रूप से कल्पना जन्म लेने लगती है। वह माध्यमिका वाक् से बादलों में रहती है, इन्द्र की वृत्र (मेघ) हनन में सहायता करती है और जल-वर्षण होता है। इस वर्षण से सृष्टि का कार्य चलता है। ऊपर वाक् को प्रजापति के मस्तिष्क से उत्पन्न दिखाया गया है और वह वाक् वेदों का प्रतिनिधित्व करती है। पुराणों में स्वतः सरस्वती (वाक्) को ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार वैदिक वाक् तथा प्रजापति पौराणिक सरस्वती तथा ब्रह्मा के समानान्तर हैं। ब्रह्मा तथा सरस्वती के समन्वय का बीज वेदों में नामान्तर से हुआ है।

४. वाक् तथा गन्धर्वों की कथा :

ब्राह्मणों में वाक् तथा गन्धर्वों की कथा अत्यन्त रोचक है। इस कथा का पूर्ण विवेचन करने के पूर्व यह अपेक्षित प्रतीत होता है कि हम गन्धर्वों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त कर लें।

गन्धर्वों के चरित्र तथा प्रकृति के विषय मे बड़ा मत-भेद है। वे केवल **ब्राह्मणों** में ही वर्णित नहीं हैं, अपितु **ऋग्वेद** में भी उनका वर्णन उपलब्ध होता है। वहाँ वे एक वचन[१६] तथा बहुवचन[१७] में प्रदर्शित हैं। वेदों में उन्हें सोम-पेय से वञ्चित प्रदर्शित किया गया है तथा यह वञ्चितता उन्हें एक अपराध-स्वरूप मिली है, क्योंकि उनकी संरक्षता में विश्वावसु सोम को चुरा ले गया।[१८] वे अप्सराओं से सम्बद्ध हैं तथा ये अप्सराएँ दिव्य जलों से सम्बद्ध हैं। जल उनका मूल निवास माना गया है तथा ये जल की आत्मा-स्वरूप हैं। The "dominant trait in the character of the Apsarases, the original water-spirits, is their significant relation with apah, the aerial waters, and consequenty, their sway over the human mind-a later development to link mind with the deities connected with waters."[१९] इसी प्रकार गन्धर्व आकाश में रहते हैं तथा

---

१६. ऋ० १.१६३.२; ९.८३.४,८५.१२; १०.१०.४, ८५.४०-४१, १२३.४,७, १३९.५-६,१७७.२

१७. **वही**, ९.११३.३

१८. बी० आर० शर्मा, 'सम आसपेक्ट्स ऑफ गन्धर्वस् एण्ड अपसरसस्', **पूना ओरिएण्टलिस्ट**, भाग १३, न० १-२ (पूना, १९४८), पृ० ६८

१९. **वही**, पृ० ६६

वे आकाश तथा स्वर्ग के रहस्यों को जानते हैं और वे भी जलों से सम्बद्ध हैं। चूँकि गन्धर्व आकाश से सम्बद्ध हैं, अत एव वे वहाँ से जल उत्पन्न करने में समर्थ हैं।[२०] गन्धर्वों के दिव्य जलों का सम्बन्ध उन्हें वाक् के समीप लाता है, क्योंकि जब प्रजापति सृष्टि करना चाहते थे, तब उन्होंने वाक् से जलों को उत्पन्न किया[२१]। जल को उत्पन्न करने के कारण इनका स्वभाव समान है। इस समानता के कारण वाक्, गन्धर्वों तथा अप्सराओं में अत्यन्त सान्निकट्य है। वाक् भावनाओं की माँ है और गन्धर्व उनके प्रतीक हैं। वाक् अप्सराओं की भी कर्त्री है : "She is," as Danielou rightly observes, "the mother of the emotions, pictured as the Fragrances or the celestial musicians (gandharva) : She gives birth to the uncreated potentialities, represented as celestial dancers, the water-nymphs (apsaras)."[२२]

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि वाक् ने गन्धर्वों तथा अप्सराओं को जन्म दिया। कहा जाता है कि गन्धर्वों का सुगन्ध के प्रति अति प्रेम है। वे सोम की रक्षा करते हैं और उनका सोम पर आधिपत्य है। **ब्राह्मणों** में उन्हें मानवीय गर्भभ्रूण से सम्बद्ध दिखाया गया है तथा वे अविवाहित कुमारियों से अत्यन्त प्रेम करते हैं।[२३] ब्राह्मणेतर पुराण-कथा में उनकी दशा भिन्न है। यहाँ वे दैवी अत्युत्तम गायकों के रूप में प्रदर्शित हैं तथा वे वीणा बजाते दिखाये गये हैं। उन्हें सङ्गीत का सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात है।[२४] इसी प्रकार वैदिकेतर साहित्य तथा मूर्ति-विद्या के क्षेत्र में दिखाया गया है कि सरस्वती अपने एक हाथ में वीणा धारण करती है और उसके द्वारा गीत तथा गीत-ध्वनियों को उत्पन्न करती है।[२५] जिस प्रकार सङ्गीतज्ञ अपने वाद्य-यन्त्र के द्वारा विभिन्न भावनाओं तथा विचारों को प्रकट करता है, उसी प्रकार सरस्वती अपनी वीणा द्वारा भावनाओं को प्रकट करती है तथा श्रोताओं के मानसिक भावनाओं को जगाती है, अत एव उसे भावनाओं की माँ कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सङ्गीत तथा भावनाओं का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। गन्धर्व भावनाओं के प्रतीक हैं और उनका सङ्गीत से महान् प्रेम है। इसी कारण वे सदैव वीणा धारण किये रहते हैं। ऊपर वाक् का सम्बन्ध भावनाओं तथा गन्धर्वों से दिखाया गया है, परन्तु प्रसङ्गानुसार वाक् को सरस्वती समझना चाहिए, क्योंकि वह ही सङ्गीत की स्रोत है तथा उसका ही

---

२०. एलान डेनिलू, **हिन्दू पालिथीज़म** (लन्दन, १९६४), पृ० ३०५
२१. जान डाउसन, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ३२९-३३०
२२. एलान डेनिलू, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० २६०
२३. **वही**, पृ० ३०६
२४. **वही**, पृ० ३०६
२५. द्र० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, **सरस्वती इन संस्कृत लिटिरेचर** (गाज़ियाबाद, १९७८), पृ० १३०-१३३

वीणा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। गन्धर्वों का सोम से सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है, परन्तु सरस्वती भी इन्द्र से सम्बद्ध है। जब इन्द्र अधिक सोम-पान कर लेता है, तब सरस्वती उसकी चिकित्सा करती है। वह कथा **यजुर्वेद** में सविस्तार वर्णित है।

वाक् तथा गन्धर्वों की कथा सोम से प्रारम्भ होती है। यह कथा कुछ भिन्नता के साथ **यजुर्वेद** में घटित होती है, जिसमें सोम, इन्द्र, नमुचि, सरस्वती तथा अश्विनों का वर्णन है।[२६] **ब्राह्मणों** में भी यह कथा वर्णित है। प्रतीत होता है कि **ब्राह्मणों ने** यह कथा **यजुर्वेद** से उधार ली है, परन्तु इस कथा में थोड़ा अन्तर है। **यजुर्वेद** में नमुचि को सोम चुराते हुए प्रदर्शित किया गया है, परन्तु ब्राह्मणों में गन्धर्व इन्द्र के सोम का अपहरण करते हैं तथा वे उसे जल में छिपा देते है : **"गन्धर्वा ह वा इन्द्रस्य सोममप्सु प्रत्यायिता गोपयन्ति त उह स्त्रीकामास्ते हासु मनांसि कुर्वते।"**[२७] गन्धर्व सोम की केवल चोरी ही नहीं करते, अपितु उनकी रक्षा भी करते हैं।[२८] फिर भी सोम की चोरी के विषय में बड़ी भ्रान्तियाँ हैं। अन्ततः यह सोम गन्धर्वों के पूर्ण आधिपत्य में आ गया था तथा देवता उसे वापस केवल परिक्रयण के माध्यम से प्राप्त कर सके। सोम की प्राप्ति-विधि का नाम 'सोम-क्रय' है।[२९] यह वर्णन सविस्तार **ऐतरेय** तथा **शतपथ ब्राह्मणों** में आया है तथा उसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

५. एतरेयब्राह्मण की कथा :

ब्राह्मणों का कथन है कि वाक् स्वेच्छानुसार स्त्री-रूप में परिणत हो गई। यह कथन निम्नलिखित प्रत्यवेक्षण से स्वतः सिद्ध हैं। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि गन्धर्व स्त्रियों के अत्यन्त प्रेमी हैं। यहाँ वाक् देवों की स्त्री-रूप में प्रकल्पित है। सोम गन्धर्वों के पास था, जिसके कारण देवों को बड़ी चिन्ता थी। फलतः वे ऋषियों से मिल कर सोम को वापिस पाने की विधि पर विचार करने लगे। इसी बीच वाक् ने मध्यस्थता की और बोली कि मुझे गन्धर्वों की स्त्री-प्रियता का ज्ञान है। उसने अपनी सेवाएँ अर्पित की और बोली कि मैं स्त्री-रूप बना कर गन्धर्वों के पास जा सकती हूँ तथा सोम का क्रय कर सकती हूँ। देवों ने वाक् की अनुमति को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे उसके विना नहीं रह सकते थे। वाक् ने प्रण किया कि मन्तव्य की पूर्ति होते ही मैं वापस आ जाऊँगी। देवों ने उस प्रण को स्वीकार कर लिया तथा उस विधि से सोम-क्रय हुआ :

"सोम वै राजा गन्धर्वेष्वासीत् तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् कथम् अयम्

---

२६. द्र० **यजुर्वेद**, १०.३३-३४; ऋ० १०.१३१.४-५; मैक्समूलर, **सेक्रेड बुक्स ऑफ द इस्ट**, भाग ४२, पृ० ३२८

२७. **शाङ्खायनब्राह्मण**, १२.३

२८. बी० आर० शर्मा, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ६८

२९. द्र० आगे की **शतपथब्राह्मण** की कथा

अस्मान् सोमो राजा ऽऽ गच्छेदिति सा वागब्रवीत् स्त्रीकामा वै गन्धर्वा मयैव स्त्रीया भूतया पणध्वमिति नेति देवा अब्रुवन् कथं वयं त्वदृते स्यामेति सा अब्रवीत् क्रीणीतैव मया अर्थो भविता तर्ह्येव वोऽहं पुनरागताऽस्मीति तथेति तया महानग्नया भूतया सोमं राजनम् अक्रीणम् ।"[३०]

एतदनुसार सोम गन्धर्व विश्वावसु के द्वारा चुराया गया था तथा स्वान् तथा भ्राजि नामक गन्धर्वों से रक्षित था ।[३१]

६. शतपथब्राह्मण की कथा :

इस **ब्राह्मण** में कथा कुछ अधिक विस्तार से वर्णित है। इस **ब्राह्मण** में दिखाया गया है कि सोम स्वर्ग में था। देवता पृथिवी-तल पर सोम-यज्ञ करना चाहते थे, परन्तु सोम के अभाव में यह सम्भव नहीं था। फलतः सोम को लाने के लिए उन्होंने सुपर्णी एवं कद्रू नामक दो मायाओं को उत्पन्न किया। सुपर्णी तथा कद्रू आपस में लड़ने लगीं तथा कद्रू ने सुपर्णी को हरा दिया। फलतः सुपर्णी को सोम लाना पड़ा। तदर्थ उसने स्वयं को छन्दों में परिणत कर दिया तथा उन छन्दों में से छन्दों की देवी गायत्री सोम को लाई ।[३२]

यहाँ सोम को स्वर्गस्थ दिखाया गया है। गायत्री सोम को लाने के लिए एक पक्षी का रूप धारण कर स्वर्ग को उड़ी ।[३३] सोम लेकर आते समय विश्वावसु नामक गन्धर्व ने उसे रोका तथा गन्धर्वों ने उससे सोम ले लिया । जब गायत्री को वापस आने में अत्यधिक विलम्ब हो गया, तब उन्होंने विचार किया कि हो न हो, गन्धर्वों ने सोम छीन लिया हो ।[३४] जब कुछ आशा नहीं रही, तब उन्होंने किसी अन्य को भेजने का विचार किया। उन्हें ज्ञात था कि गन्धर्व स्त्रियों के प्रेमी हैं, अत एव उन्होंने वाक् को तदर्थ भेजा ।[३५]

इन दोनों कथाओं में कुछ अन्तर है ।**ऐतरेय-ब्राह्मण** के अनुसार स्वयं वाक् ही देवों की सहायता के लिए उद्यत है। उसने स्वयं ही कहा कि देवता स्त्री-प्रेमी हैं। मैं आप लोगों की सहायता करूँगी तथा सोम प्राप्त होते ही वापस आ जाऊँगी ।[३६] **शतपथ-ब्राह्मण** के अनुसार देवों को स्वतः ज्ञात था कि गन्धर्व स्त्री-प्रेमी हैं, अत एव उन्हें वाक् को भेजना पड़ा। **शतपथब्राह्मण** के अनुसार जब वाक् सोम लेकर वापस आ रही

---

३०. **ऐतरेयब्राह्मण**, १.२७

३१. **तु० वही**, १.२७; इसी पर सायण की व्याख्या ।

३२. **शतपथब्राह्मण**, ३.२.४.१

३३. **वही**, ३.२.४.२

३४. **वही**, ३.२.४.२

३५. **वही**, पृ० ३.२.४.३

३६. **ऐतरेयब्राह्मण**, १.२७

थी, तब गन्धर्वों ने उसका अनुगमन किया। वे देवताओं से बोले कि सोम के बदले में हमें वाक् को दे दें। देवताओं ने एक शर्त पर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली कि यदि वाक् उनके पास से आना चाहे, तो वे उसे अपने पास रहने को बाध्य न करें।[३७] फलतः देवता तथा गन्धर्व उसे लुभाने लगे। गन्धर्व वेद का उच्चारण करने लगे[३८] तथा देवता उसको लुभाने के लिए वीणा बजाने लगे। देवता विजयी हुए तथा गन्धर्वों को वाक् तथा सोम दोनों को त्याग देना पड़ा।[३९] लौकिक-साहित्य में सरस्वती सभी कलाओं तथा विद्याओं की संरक्षिका है[४०] तथा म्यूज़ के रूप में उसकी बहुशः स्तुति हुई है।[४१] सरस्वती का यह वैदिकेतर स्वरूप, जो सभी कलाओं तथा विद्याओं से जुड़ा हुआ है, वह रूप ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है।

निष्कर्ष-रूप में हम कह सकते हैं कि सरस्वती लौकिक-साहित्य में वीणा-वादन करती हुई प्रदर्शित है। वह सङ्गीत की देवी भी है। वह सभी कलाओं तथा विद्याओं की संरक्षिका है। फलतः मूर्ति-विद्या के क्षेत्र में उसके एक हाथ में वीणा दिखाई गई है।। शुभ कार्यों के प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति सङ्गीत तथा वाक् की देवी के रूप में की गई है। इस संरम्भ का बीज स्वतः ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है। वहाँ कुछ अन्तर के साथ वीणा तथा गायन का वर्णन है। वहाँ स्वतः देवों के हाथ में वीणा है तथा वे उसे बजा कर वाक् को प्रलोभित करना चाहते हैं। यहाँ देवों तथा वाक् का प्रसङ्ग है। यह क्रम लौकिक-साहित्य में बदला हुआ है। लौकिक-साहित्य में सरस्वती स्वयं वीणा धारण करती है तथा उससे देवों तथा अन्यों का मनोरञ्जन होता है। इस प्रसङ्ग से हम वाक् का तादात्म्य सरस्वती से कर सकते हैं।

७. सरस्वती की कुछ महत्वपूर्ण उपाधियाँ :

ब्राह्मणों में सरस्वती को अत्यल्प उपाधियाँ मिली हुई हैं। उनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन निम्नलिखित है।

(क) वैशम्भल्या :

ब्राह्मणों तथा **आरण्यकों** में से केवल **तैत्तिरीयब्राह्मण** में सरस्वती को यह उपाधि केवल एक बार मिली है।[४२] सायण इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं :

---

३७. **शतपथब्राह्मण**, ३.२.४.४

३८. **वही**, ३.२.४.५

३९. **वही**, ३.२.४.६-७

४०. जान डाउसन. पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० २८४

४१. जेम्स हेस्टिङ्गस, **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स**, भाग ७ (न्युयार्क, १९५५), पृ० ६०५

४२. **तैत्तिरीयब्राह्मण**, २.५.८.६

"विश्वां प्रजानां भरणं पोषणं विशम्भलं तत्कर्तुं क्षमा विशम्भल्या तादृशी...।"[४३] तदनुसार वैशम्भल्या वह है, जो सम्पूर्ण प्रजाओं का भरण-पोषण करती है। यह संयुक्त शब्द वैशम् + भल्या से बना है। वैशम् √विश् से बना है, जिसके अनेक अर्थ हैं : "a man, who settles down on or accupies the soil, an agriculturist, a merchant, a man of the third or agricultural caste (=vaisya, p. v.); a man in general; people.[४४]"

इसी प्रकार 'भल्या' भर (√भृ=धारण करना या सहारा देना) के समकक्ष प्रतीत होता है।[४५] यहाँ वैशम्भल्या सरस्वती के प्रकृति अथवा चरित्र पर ध्यान रखते हुए यह एक सर्वप्रिय उपाधि प्रतीत होती है। यह उपाधि सरस्वती को एक नदी उद्घोषित करती है। सरस्वती को ऐसा इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह अपने स्वास्थ्य-वर्धक जलों द्वारा उन लोगों का भरण-पोषण करती है, जो कृषि-कर्म पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं अथवा जो उसके प्रतिवासी हैं। सरस्वती को 'वाजिनीवती' कहा गया है, क्योंकि वह अन्न-दात्री है।[४५] वैशम्भल्या का अर्थ इस वाजिनीवती के अर्थ के आस-पास है।

इस तरह की उपाधियों के प्रयुक्त होने के पहले जलों की महती प्रशंसा की गई है। उन जलों को औषध के समान माना गया है तथा उन्हें **विश्वभेषजीः**[४६] कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे जल सम्पूर्ण संसार के लिए औषध के समान हैं।[४७] विश्वभेषजीः का प्रयोग पहले है, तदनन्तर वाजिनीवती तथा वैशम्भल्या के प्रयोग मिलते हैं। वैशम्भल्या से उपर्युक्त अर्थ की प्रतीति होती है।[४८] मधुर मधु के समान सरस्वती का जल गौओं में प्रभूत दुग्ध[४९] तथा अश्वों में शक्ति को उत्पन्न करता है।[५०] वाक् के रूप में भी सरस्वती पालन-पोषण अथवा शक्ति (पुष्टि) प्रदान करती है, जिसमें पशु भी समाश्रित हैं।[५१]

---

४३. सायण-व्याख्या **वही**, २.५.८.६

४४. तु० मोनियर विलियम्स, **ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी** (आक्सफोर्ड, १९७२), पृ० ९४१

४५. वामन शिवराम आप्टे, **द प्रैक्टिकल संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी** (पूना, १८९०), पृ० ८०९

४६. **तै० ब्रा०** २.५.८.६

४७. **वही**, २.५.८.६

४८. सायण-व्याख्या **वही**, २.५.८.६

४९. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ८२-८३

५०. तु० गेल्डनर **ऋ०** ७.९६.३ (वाजिनीवती के प्रसङ्ग में)

५१. **श० ब्रा०** ३.१.४.१४

(ख) सत्यवाक् :

ऋग्वेद में सरस्वती को '**चोदयित्री सूनृतानाम्**' कहा गया है, क्योंकि वह सुन्दर तथा सत्य वाक् को प्रेरित करने वाली है। इस सन्दर्भ में सरस्वती कर्त्री अथवा साधन है तथा सत्य वाक् कर्म है। यहाँ दोनों का ऐक्य वर्णित नहीं है। इसके विपरीत **तैत्तिरीयब्राह्मण** में उसे सत्यवाक् ही कह दिया गया है, अर्थात् सरस्वती सत्य वाक्-स्वरूप ही है।[५३] श्रीमाधव ने सत्य वाक् का चतुर्थ्यन्त रूप '**सत्यवाचे**' का '**अमृतवाक्यरहितायै**' अर्थ किया है।[५४] यह अर्थ सूचित करता है कि वाक् के रूप में सरस्वती पूर्ण सत्य है। इसकी पुष्टि एक ऋग्वैदिक उदाहरण से होती है, जिसमें उसे 'पवित्र विचारों को प्रकाशित करने वाली—**चेतन्ती सुमतीनाम्**'[५५] कहा गया है।

(ग) सुमृडीका :

'सुमृडीका' उपाधि **तैत्तिरीयब्राह्मण** तथा **तैत्तिरीय-आरण्यक** में प्रयुक्त है। इसका तात्पर्य '**मयोभूः**'[५६] के अर्थ में है, जो सरस्वती के लिए **ऋग्वेद** में प्रयुक्त है तथा जिसका अर्थ सायणाचार्य ने '**सुखोत्पादिका**'[५७] तथा 'सुखस्य भावयित्री'[५८] किया है।

सुमृडीका का प्रयोग चतुर्थ्यन्त में अदिति के लिए **तैत्तिरीयब्राह्मण** में प्रयुक्त है। '**अदित्यै स्वाहा अदित्यै महत्यै स्वाहा। अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहेत्याह।**'[५९] यहाँ सुमृडीका का अर्थ दयालु (liberal) है। देवों की माता के रूप में अदिति स्वभाव से अपनी सन्तानों के प्रति नितान्त उदार है। **तैत्तिरीय-आरण्यक** में यह शब्द अनेकशः प्रयुक्त है।[६०] सायण ने इसकी व्याख्या 'सुष्ठु सुखहेतुः'[६१] और '**सुष्ठु सुखकारी**'[६२] किया है। सरस्वती इडा के रूप से शान्ति तथा समृद्धि को प्रदान करती है तथा लोगों को सुन्दर उपहारों को देती है। इस प्रकार वह लोगों के लिए विश्राम तथा प्रसन्नता लाती है। सायण ने **तैत्तिरीय-आरण्यक** में सरस्वती के लिए प्रयुक्त **सुमृडीका** से इसी प्रकार का भाव अथवा अर्थ ग्रहण किया है। **सुमृडीका** का अर्थ 'अच्छी मिट्टी रखने वाली' भी है। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि **तैत्तिरीय-आरण्यक** सरस्वती

---

५२. **ऋ०** १.३.११ ५३. **तै० ब्राह्मण**, २.५.४.६

५४. **तैत्तिरीयब्राह्मण**, भट्टभाष्कर मिश्र की व्याख्या सहित अष्टक २, (**मैसूर**, १९२१), पृ० २४६

५५. **ऋ०** १.३.११

५६. **वही**, १.१३.९; ५.५.८

५७. सायण-भाष्य **वही**, १.१३.९

५८. **वही**, ५.५.८

५९. **तै० ब्रा०** ३.८.११.२

६०. **तै० आ०** १.१.३, २१.३, ३१.६; ४.४२.१

६१. तु० सायण-भाष्य **वही**, १.१.३ ६२. **वही**, ४.४२.१

को एक ऐसी भूमि के रूप में चित्रित कर रहा है, जो जल-युक्त है : **'सरस्वती सरोयुक्त-भूमिरूपा इण्टके'**।[६३] इस स्थिति में सरस्वती सुमृडीका के रूप से उस भूमि का प्रतिनिधित्व करती है, जिसकी मिट्टी अत्यन्त उर्वरा है। उपजाऊ भूमि अच्छी फसल को उत्पन्न करती है, जिससे समृद्धि आती है। सरस्वती इस प्रकार का कार्य करती है, अत एव उसे **'शिवा'** तथा **'शन्तमा'** होने की प्रार्थना की गई है।[६४] यहाँ **'शिवा'** का अर्थ कल्याण प्रदान करने वाली तथा **'शन्तमा'** का अर्थ शान्ति प्रदान करने वाली, दुःखों और आपत्तियों का दमन करने वाली है।

इन उपाधियों के अतिरिक्त सरस्वती को **ब्राह्मणों** में सुभगा[६५], वाजिनीवती[६६] पावका[६७], इत्यादि कहा गया है।

८. सरस्वती तथा सरस्वान् :

शतपथब्राह्मण के अनुसार सरस्वान् मनस् का प्रतीक है: **'मनो वै सरस्वान्'** तथा सरस्वती वाक् की प्रतीक है: **'वाक् सरस्वती।'** यहीं दो सारस्वतों की कल्पना दो स्रोतों के रूप में की गई है: **'सारस्वतौ त्वोत्सौ।'**[६८] सरस्वान् तथा सरस्वती की मन तथा वाक् में तादात्म्यता की झलक स्पष्टतः एक दूसरे काण्ड में प्राप्त होती है : **"मनश्चैवाऽस्य वाक् चैधारौ सरस्वांश्च सरस्वती च सव्विद्यान् मनश्चैव मे व्वाक् चाधारौ सरस्वांश्च सरस्वती चेति।"**[६९]

इस प्रकार मन तथा वाक् सन्निकटता से एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। एतदर्थ सायण को उद्धृत किया जा रहा है : **"मनश्चैवेत्यादि। 'अस्य' यज्ञशरीरस्य इमौ आधारौ मनोवाग्रूपौ ज्ञातव्यौ। तौ क्रमेण 'सरस्वांश्च सरस्वती च एतद् द्वयात्मकौ भवतः। आध्यात्मकं तयोरुपासनमाह। सवीद्यादिति। मम मनश्च वाक् च सरस्वत्-सरस्वतीरूपावाधाराविति जानीयादित्यर्थः।"**[७०]

मन तथा वाक् के तादात्म्य को एक भिन्न प्रकार से भी जाना जा सकता है। मनस् समान रूप से 'रस' तथा 'बल' आच्छिन्न माना गया है (रसबलसममात्राव-च्छिन्न)। समता की स्थिति में सम्पूर्ण वस्तु स्थिर तथा निश्चल रहती है, अत एव कोई प्रभाव तथा कार्य की स्थिति नहीं बनती है। जब थोड़ा भी बलाघात होता है,

---

६३. **वही**, १.१.३
६४. **वही**, ४.४२.१
६५. **तै० ब्रा०** २.५.४.६
६६. **वही**, २.५.४.६,८.६
६७. **वही**, २.४.३.१
६८. **श० ब्रा०** ७.५.१.३१
६९. **वही**, ११.२.६.३
७०. सायण-भाष्य **वही**, ११.२.६.३

जैसे किसी विचार के प्रकटीकरण की इच्छा, तब मन श्वास में परिणत हो जाता है। जब बलाघात तीव्रतम हो जाता है, तब वह ही श्वास वाक् में परिणत हो जाती है। इस मनोवैज्ञानिक आधार पर मन तथा वाक् का निकटतम सम्बन्ध है[७१] तथा मन तथा वाक् का प्रतिनिधित्व सरस्वान् तथा सरस्वती करते हैं।

ऐतरेयब्राह्मण में सरस्वान् को सरस्वतीवान् तथा भारतीवान् कहा गया है।[७२] इससे वहाँ प्रार्थना की गई है कि वह यज्ञ की अग्नि में डाले गये 'परिवाप' को ग्रहण करे। इसी प्रकार सरस्वती को बहुशः यज्ञ में बुलाया गया है[७३] तथा वह वाक् के रूप में यज्ञ से समन्वित है अथवा यज्ञ-रूप ही है।[७४] सरस्वान् वाक् या वाणी से युक्त है, अत एव वह सरस्वतीवान् कहा गया है। इसी प्रकार सरस्वान् भारती अर्थात् प्राण अथवा श्वास से संयुक्त है, अत एव उसे भारतीवान् कहा गया है। यही प्राण अथवा श्वास शरीर को धारण किये रहता है।[७५]

६. सरस्वती का वाक् से तादात्म्य :

सरस्वती सर्वप्रथम एक पार्थिव नदी थी, परन्तु अपने जलों की पवित्रता के कारण उसे दैवी चरित्र मिला। तत्पश्चात् वह वाक् तथा वाक् की देवी भी बन गई।[७६]

सरस्वती नदी के पवित्र जलों ने लोगों में पवित्र जीवन प्रदान किया। इस पवित्र जीवन के कारण उनमें पवित्र वाक् का जन्म ऋचाओं के रूप में उद्‌बुद्ध हुआ। इन पवित्र ऋचाओं के कारण सरस्वती नदी का तादात्म्य वाक् तथा वाग्देवी से हो गया। सरस्वती नदी का तादात्म्य वाक् से है, इसकी पुष्टि इस प्रमाण से होती है कि वाक् कुरु-पञ्चाल के मध्य अवस्थित प्रदर्शित है : "**तस्मादत्रोऽत्राहि व्वाग् वदति कुरु-पञ्चालत्रा व्वाग् ध्येषा**···।"[७७] यहाँ जिस वाक् का वर्णन किया गया है, वह सरस्वती नदी ही है, जो कुरु-पञ्चाल क्षेत्र से होकर बहती है। सरस्वती अथवा वाक् का सम्बन्ध सोम से भी पाया जाता है[७८] तथा इस सम्बन्ध के कारण सरस्वती को '**अंशुमती**' कहा गया है, जिसका अर्थ सोम से परिपूर्ण है : "Soma frightened by Vrtra,

---

७१. तु० **शतपथब्राह्मण हिन्दीविज्ञानभाष्य सहित**, भाग २ (राजस्थान-वैदिक-तत्त्वशोध-संस्थान, जयपुर, १९५६), पृ० १३५३

७२. **ऐ० ब्रा०** २.२४

७३. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ५४, पाद-टिप्पणी १६५

७४, **श० ब्रा०** ३.१.४.९,१४ इत्यादि।

७५. सायण-भाष्य **ऐ० ब्रा०** २.२४

७६. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, **पूर्वोद्धृत** ग्रंथ, पृ० २८-२९

७७. **श० ब्रा०** ३.२.३.१५

७८. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ९९-१०३

fled to the Anshumati, flowing in the kuruksetra region. He settled there along with him. They used Soma, and thereby evolved Soma-sacrifices."[७९]

शतपथब्राह्मण से ज्ञात होता है कि सरस्वती का जल पवित्रीकरण-संस्कार में प्रयुक्त होता था। इसी सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि पवित्रीकरण-संस्कार जल से नहीं, अपितु वाक् से किया गया।[८०] इस प्रकार इस कथन से जल का तादात्म्य वाक् से दिखाया गया है। इस कथन को स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है। यज्ञ सरस्वती के तटों पर सम्पन्न हुए तथा यज्ञों के सम्पादनार्थ सरस्वती के आशीर्वादों की याचना की गई। तदनन्तर सरस्वती की स्तुति पवित्र वाणी के लिए की गई तथा सरस्वती नदी को ही वाक् तथा वाक् की देवी मान लिया गया। **शतपथब्राह्मण** से ज्ञात होता है कि यज्ञों में उच्चारित मंत्र वाक्-स्वरूप हैं तथा यज्ञों में मंत्रों के अधिक उच्चारण से स्वतः यज्ञ को ही वाक् कह दिया गया है।[८१] जब यज्ञ से सम्बद्ध देवों के सम्मानार्थ मन्त्रों का निरन्तर पाठ होता है, तब यज्ञ का ही देवों से तादात्म्य हो गया है।[८२] साथ-ही साथ यज्ञ का तादात्म्य वाक् से माना गया है।[८३]

१० ब्राह्मणों में जगत्-सम्बन्धी वाक् की कथा :

ऋग्वेद में सरस्वती के लिए '**सप्तस्वसा**'[८४] का प्रयोग हुआ है। सायणाचार्य तथा अन्य व्याख्याकारों ने सप्तस्वसा का अर्थ गायत्री आदि सात छन्द किया है। इन छन्दों में गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती की विश्वविद्या (Cosmology) के सम्बन्ध से अत्यधिक महत्त्व है। गायत्री के विषय में एक अत्यन्त सुन्दर कथा पाई जाती है। गायत्री को आठ अक्षरों वाली माना जाता है। गायत्री के ये आठ अक्षर प्रजापति के आठ क्षरण-व्यापार हैं, जिन्हें प्रजापति ने आठ बार में किया था। प्रजापति ने ये आठ क्षरण-व्यापार उस समय किया, जब वह सृष्टि करना चाहते थे। इस कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है। प्रारम्भ में प्रजापति अकेला था, अत एव वह अपने को पुनः उत्पन्न करने की इच्छा रखता था। एतदर्थ उसने तप किया तथा इस तप के फल-स्वरूप जल उत्पन्न हुए।[८५] जलों ने प्रजापति से अपनी उपयोगिता के विषय में पूछा। प्रजापति ने कहा कि तुम्हें गर्म किया जाना चाहिए। फलतः वे तपाये गये तथा तपने

---

७९. डॉ० सूर्यकान्त, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ११५

८०. श० ब्रा० ५.३.४.३,५.८

८१. वही, ३.१.४.९, १४ इत्यादि।

८२. तु० गो० ब्रा० २.१.१२

८३. श० ब्रा० ३.१.४.९,१४ इत्यादि।

८४. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ३८-३९

८५, श० ब्रा० ६.१.३.१, ८५

के कारण उन से गाज (foam) उत्पन्न हुआ।[८६] इसी प्रकार गाज को तपाया गया तथा उससे मिट्टी उत्पन्न हुई।[८७] जब मिट्टी तपाई गई, तब उससे बालू उत्पन्न हुआ।[८८] उसी प्रकार बालू से कङ्कड़, कङ्कड़ से पत्थर, पत्थर से धातु और अन्त में स्वर्ण उत्पन्न हुआ।[८९] यही प्रजापति का क्षरण-व्यापार है तथा उसका हर व्यापार प्रति अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है, जो गायत्री से उपलब्ध है। इस प्रकार गायत्री आठ अक्षरों वाली बनी।

कहा जाता है कि वाक् ने इस संसार की उत्पत्ति की। गायत्री भी यही कार्य करती है। वह प्रजापति के संसर्ग से संसार के सर्जन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[९०] त्रिषधस्था के रूप में सरस्वती तीनों संसार, पृथिवी, आकाश तथा द्युलोक का प्रतिनिधित्व करती है।[९१] गायत्री को भी त्रिपदा कहते हैं तथा **शतपथ-ब्राह्मण** की कथा के अनुसार वह प्रजापति से समुत्पन्न है। प्रजापति ने तीनों संसार, पृथिवी, आकाश तथा द्युलोक का निर्माण किया तथा गायत्री के तीन चरण उनका प्रतिनिधित्व करते हैं।[९२] यही गायत्री सरस्वती का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने भिन्न-भिन्न व्यक्तित्त्वों से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। वह इडा के रूप से पृथिवी का, सरस्वती के रूप से आकाश तथा भारती के रूप से स्वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।[९३]

ऐतरेय-ब्राह्मण में वाक् को प्रजापति की सन्तान माना गया है।[९४] यही वैदिक प्रजापति वैदिकेतर साहित्य में ब्रह्मा बन गया है तथा जगत् का स्रष्टा जाना जाता है। ब्रह्मा तथा प्रजापति के व्यक्तित्व का ऐक्य **ऐतरेयब्राह्मण** में उपलब्ध होता है,[९५] जहाँ गायत्री उसका क्षरण है तथा व्याहृति भूः भुवः तथा स्वः हैं। इन्हीं व्याहृतियों का उन तीन अक्षरों से समन्वय हो गया है, जो ॐ का निर्माण करती हैं तथा यह ओ३म् ब्रह्म का प्रतीक है। प्रजापति का छन्दों[९६] से तादात्म्य इस प्रकार बताया गया है कि विश्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त वाक् से जुड़ा हुआ है तथा यह वाक् छन्द के रूप से मन है

---

८६. वही, ६.१.३.२
८७. वही, ६.१.३.३
८८. वही, ६.१.३.४
८९. वही, ६.१.३.५
९०. वही, ६.१.३.६
९१. ऋ० ६.६१.१२
९२. ऐ० ब्रा० २०
९३. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० ६४-६८
९४. ऐ० ब्रा०, २०
९५. वही, २०
९६. श० ब्रा० ६.२.१.३०

तथा मन प्रजापति है। छन्द विभिन्न तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है।[९७]

इस प्रकार प्रजापति, वाक् तथा छन्द का पारस्परिक सम्बन्ध है। सृष्टि के आदि में प्रजापति था। तदनन्तर वाक् की उत्पत्ति हुई। सृष्टि के निर्माण के लिए प्रजापति का वाक् पर पूर्ण आधिपत्य है। इसी आधिपत्य के कारण वही प्रजापति वाचस्पति भी कहलाता हैं।[९८] प्रजापति को कतिपय अन्य नामों से भी अभिहित किया गया है तथा ये नाम उनकी उपाधियाँ प्रतीत होती हैं। उनमें प्रमुख इलस्पति, वाचस्पति, ब्रह्मणस्पति आदि हैं।[९९] वाक् निर्माण में प्रबल शक्ति है, क्योंकि छन्द जो वाक् के ही अवयव हैं, उन्हें इन्द्रिय कहा गया है।[१००]

११. वाक् का सरस्वती से समन्वय :

केवल **ब्राह्मण-ग्रंथों** में वाक् तथा सरस्वती का समन्वय स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रमुख ब्राह्मणों के कुछ सन्दर्भ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(क) **शतपथब्राह्मण** : उपर्युक्त प्रसङ्ग से **शतपथब्राह्मण** में कई सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। यहाँ कुछ स्थल द्रष्टव्य है। यहाँ कहा गया है कि पवित्रीकरण-संस्कार हो रहा है और उसमें सरस्वती का जल छिड़का जा रहा है। यह विधि वस्तुतः वाक् के द्वारा सम्पन्न समझनी चाहिए।[१०१] यह ब्राह्मण पुनः बलपूर्वक कहता है कि सरस्वती वाक् है तथा वाक् यज्ञ है।[१०२] चूँकि सरस्वती वाक् है, अत एव प्रजापति ने इससे स्वयं को शक्तिशाली बनाया।[१०३] हम **ऋग्वेद** में देखते हैं कि वाक् एक ऋषि की पुत्री है[१०४] तथा वह एक स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है। इस सन्दर्भ में सरस्वती का वर्णन नहीं है, परन्तु जब वाक् को एक ऋषि की पुत्री कहा गया है, तो इससे सरस्वती की उत्पत्ति का आभास मिलता है, क्योंकि सरस्वती वाक् के मुख से निस्सृत है। **शतपथ-ब्राह्मण** सरस्वती को एक स्त्री के रूप में प्रस्तुत करता है तथा वह वाक्-स्वरूप है।[१०५]

---

९७. **शतपथब्राह्मण रत्नदीपिका भाष्य सहित**, भाग १ (नई दिल्ली, १९६७), पृ० ११३-११४; **श० ब्रा०** ८.५.२.६ के प्रसङ्ग में।

९८. **वही**, ३.१.३.२२; ५.१.१.१६

९९. **बृहद्देवता**, ३.७१

१००. **तैत्तिरीयब्राह्मण**, २.६.१८.१.३

१०१. **श० ब्रा०**, ५.३.४.३,५.८

१०२. **वही**, ३.१.४.६,१४

१०३. **वही**, ३.९.१.७

१०४. **ऋ०** १०.७१

१०५. **श० ब्रा०** ४.२.५.१४,६.३.३

यजुर्वेद[१०६] में वाक् को सरस्वती की नियन्त्री-शक्ति माना गया है। **शतपथ-ब्राह्मण**[१०७] में सर्वप्रथम सरस्वती को वाक् के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा पुनः वाक् को उसकी नियन्त्री-शक्ति घोषित किया गया है। सम्भवतः यहाँ ज्ञान की ओर सङ्केत किया गया है, जो विवेक से उत्पन्न होता है। सरस्वती तथा वाक् का तादात्म्य मन से भी उपलब्ध होता है तथा इसी मन में प्रकट होने के पूर्व विचार प्रसुप्त रहते हैं। एक अन्य स्थल पर सरस्वती का तादात्म्य मन तथा वाक् से प्राप्त होता है: **"सरस्वती त्वोत्सवौ प्रावतामिति मनो वै सरस्वान् वाक् सरस्वत्येतौ।"** इस प्रकार सरस्वती तथा सरस्वान् वाक् का पूर्ण निर्माण करते हैं।

(ख) **गोपथब्राह्मण**—यहाँ भी वाक् का सरस्वती से स्पष्ट तादात्म्य प्रस्तुत किया गया है। इस ब्राह्मण का कथन है कि जो सरस्वती की स्तुति करता है, वह वाक् को ही प्रसन्न करता है, क्योंकि वाक् सरस्वती है: **"अथ यत् सरस्वतीं यजति, वाग् वै सरस्वती, वाचमेव तेन प्रीणाति।"**[११०]

(ग) **ताड्यमहाब्राह्मण**—वैदिकेतर साहित्य में वाक् की बृहत् कल्पना पाई जाती है। इसकी परिधि में सरस्वती, वर्ण, अक्षर, पद, वाक्य तथा ध्वनि का समावेश माना गया है।[१११] यह समन्वय ब्राह्मणों में भी उपलब्ध होता है। सरस्वती की वाक् से तादात्म्यता प्रस्तुत करते हुए ब्राह्मण कहता है: **"वाग्वै सरस्दती वाग् वैरूपं वैरूवमेव अस्मै तया पुनक्ति।"**[११२] यहाँ सरस्वती को शब्दात्मिका वाक् के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अर्थात् सरस्वती वाग्रूप है, जिससे शब्द तथा ध्वनि की अभिव्यक्ति होती है। यहाँ **'रूपम्'** शब्द का प्रयोग हुआ हैं, यह वाक् के विभिन्न रूपों को प्रगट करता है। **'वैरूपम्'** के द्वारा विभिन्न पदार्थों का प्रकटीकरण हुआ है।[११३]

(घ) **ऐतरेयब्राह्मण**—इस ब्राह्मण के एक स्थल पर सरस्वती को वाक् तथा पुनः उसे पावीरवी की संज्ञा दी गई है। जो पावीरवी की स्तुति करता है, वह सरस्वती को ही प्रसन्न करता है। यहाँ पावीरवी से ध्वनि की अभिव्यक्ति हो रही है।[११४]

(ङ) **एतरेय-आरण्यक—ऋग्वेद** में सरस्वती को **धियावसुः** तथा **पावका** कहा

---

१०६. **यजुर्वेद**, ६.३०
१०७. **श० ब्रा० ५**.२.२.१३,१४
१०८. **वही**, १२.६.१.१३
१०९. **वही**, ७.५.१.१३; ११.२.४.६, ६.३
११०. **गोपथब्रा०** २.२०
१११. तु० डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, **पृ०** ६६
११२. **ता० ब्रा०** १६.५.१६
११३. सायण की व्याख्या **वही**
११४. सायण-व्याख्या **ऐ०** ब्रा० ३.३७

गया है।[११५] **ऐतरेयब्राह्मण** में भी सरस्वती को **पावका** तथा **धियावसुः** कहा गया है तथा इन दोनों की वाक् से तादात्म्यता प्रस्तुत की गई है : **"पावका नः सरस्वती यज्ञं वष्टु धियावसुरिति वाग्वै धियावसुः।"**[११६]

(च) **शाङ्खायन-ब्राह्मण**—यह ब्राह्मण सरस्वती को वाक् से समीकृत करता है। इसका कथन है कि दार्शपौर्णमासी के अवसर पर जो सरस्वती की स्तुति करता है, वह वाक् को प्रसन्न करता है : **"यत् सरस्वतीं यजति वाग्वै सरस्वती वाचमेव तत् प्रीणात्यथ"**।[११७]

(छ) **तैत्तिरीयब्राह्मण**—इस **ब्राह्मण** में भी सरस्वती के कुछ सुन्दर सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं।[११८] यहाँ प्रजापति का तादात्म्य यज्ञ तथा वाक् से उपलब्ध होता है।[११९] **शतपथब्राह्मण** के अनुसार इस प्रजापति को प्राण तथा वाक् से संयुक्त दिखाया गया है।[१२०] वाक् प्राणों (मन, श्वास आदि) का प्रकटीकरण है। ब्राह्मणों के अनुसार वाक् सरस्वती है तथा यह सरस्वती प्राणों से बढ़ कर है : **"वाग्वै सरस्वती तस्मात्प्राणानां वागुत्तमम्।"**[१२१]

लौकिक-साहित्य में '**गिरा**' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो गिर् से निष्पन्न है। गिरा उसे कहते हैं, जो मानवीय ध्वनि को अपनाने में समर्थ है।[१२२] लौकिक-साहित्य में सरस्वती को गिरा की संज्ञा दी गई है, क्योंकि वह मानवोच्चारित वाक् का प्रतिनिधित्व करती है। लौकिक-साहित्य में सरस्वती का मानवोच्चारित वाक् से जो तादात्म्य उपलब्ध होता है, उसका बीज अथवा सङ्केत स्वयं ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है। गिरा वस्तुतः वाणी अथवा रसना को कहते हैं। इसका एक पर्यायवाची शब्द जिह्वा है, जो वाक् के प्रकटीकरण का साधन है तथा साथ-साथ वाक् का उच्चारित रूप भी। इस जिह्वा शब्द का प्रयोग **शतपथब्राह्मण** में भी उपलब्ध होता है।[१२३] इस प्रकार प्रकृत सन्दर्भ में कुछ अवलोकनीय बातों पर दृष्टिपात किया गया है, जिन्हें अन्यत्र सविस्तार समझने तथा समझाने की अपेक्षा है।

---

११५. ऋ० १.३.१०
११६. ऐ० आ० १.१४
११७. शा० ब्रा० ५.२
११८. तै० ब्रा० १.३.४.५; ३.८.११.२
११९. वही, १.३.४.५
१२०. तु० **शतपथब्राह्मण** हिन्दी-विज्ञान-भाष्य सहित, भाग २, पृ० १३५३
१२१. तै० ब्रा० १.३.४.५
१२२. मोनियर विलियम्स, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृ० २८९
१२३. श० ब्रा० १२.९.१.१४ **"जिह्वा सरस्वती"**

सरस्वती-सम्बन्धी कुछ पौराणिक पाठ्य

लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समस्थितः ।
ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३० ॥

स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धं पुरुषरूपवत् ।
शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१ ॥

सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परंतप ।
ततः स्वदेहसंभूतामात्मजामित्यकल्पयत् ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः ।
अहो रूपमहो रूपमिति चाऽऽह प्रजापतिः ॥ ३३ ॥

ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनिमिति चुक्रुशुः ।
ब्रह्मा न किञ्चिद्ददृशे तन्मुखालोकमादृते ॥ ३४ ॥

अहो रूपमहो रूपमिति प्राह पुनः पुनः ।
ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत् ॥ ३५ ॥

अथ प्रदक्षिणां चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी ।
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया ॥ ३६ ॥

आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डुगण्डवत् ।
विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः ॥ ३७ ॥

चतुर्थमभवत्पश्चाद्वामं कामशरातुरम् ।
ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥ ३८ ।

उत्पतन्त्यास्तदाकाश आलोकनकुतूहलात् ।
सृष्ट्यर्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम् ॥ ३९ ॥

तत्सर्वं नाशमगमत्स्वसुतोपगमेच्छया ।
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पञ्चमं तस्य धीमतः ।
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रं चाऽऽवृणोत्प्रभुः ॥ ४० ॥

× × ×

उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम् ।
स बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः ।
स लज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥

यावदब्दशतं दिव्यं यथाऽन्यः प्राकृतो जनः।
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवत्मनुः ॥ ४४ ॥

मत्स्यपु० अध्या० ३

परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ॥ ६४।
सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या।
अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ६५ ॥

म० पु० अध्या० १२१

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे का यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ १० ॥

म० पु० अध्या० १८६

आज्यस्थालीं न्यसेत् पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥ ४४ ॥

म० पु० अध्या० २६०

मातॄणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ॥ २४ ॥
हंसाधिरूढा कर्त्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ॥ २५ ॥

म० पु० अध्या० २६१

प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती।
विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३८ ॥

× × ×

आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे महातपः।
गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ॥ ५० ॥
त्वयि योगश्च सांख्यं च विद्याविधिः क्रिया।
ऋतं सत्यं च यद्ब्रह्म अहिंसा संततिक्रमाः ॥ ५१ ॥
ध्यानं ध्यानवपुः शान्तिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः।
कान्तिः शान्तिः स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धिः सरस्वती।
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव लज्जा शांतिः प्रतिष्ठिता ॥ ५२-५३ ॥
षड्विंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता।
प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्मणस्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ॥ ५४ ॥
सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयंभुवः।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता ॥ ५५ ॥

प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ ५६ ॥
अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं संप्रसृजमानां सुरूपाम् ॥
अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्वा ॥५६॥

एवं उक्त्वा महादेवः अ (वस्त्व) हहासमथाकरोत् ।
वलितास्फोटितरवं कहाकहनदं तथा ॥ ५८ ॥

× × ×

यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती ।
तस्माच्च पशवः सर्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः ॥
तस्माच्चैषां भविष्यन्ति चत्वारो वै पयोधराः ॥ ८८ ॥

वा० पु० अध्या० २३

जैगीषव्येति विख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तथा ॥ १३८ ॥

सारस्वतः सुमेधश्च वसुवाहः सुवाहनः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयुक्तिं समाश्रिताः ॥ १३९ ॥

वा० पु० अध्या० २३

परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।
तदा चाहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः ॥ १४३ ॥

वा० पु० अध्या० २३

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः ।
मूर्तिर्मूर्तिमती साक्षाद्द्वितीया कमलालया ॥ ५३ ॥

आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः ।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ॥ ५४ ॥

कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना ।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ५५ ॥

सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणां च सुन्दरी ।
श्रेष्ठा श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा ॥ ५६ ।

वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥ ५७ ॥

गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः सुखम् ।
तन्नामगुणकीर्त्तिं च वीणया सा ननर्त च ॥ ५८ ॥

कृतानि यानि कर्माणि कल्पे कल्पे युगे युगे ।
तानि सर्वाणि हरिणा तुष्टाव च पुष्पाञ्जलिः ॥ ५९ ॥

× × ×

ब्रह्मवै० पु० ब्रह्मखण्डः, अध्या० ३

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥ ११ ॥

आविर्भूता यदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः ।
इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥ १२ ॥

स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् ।
तामुवाच हितं सत्यं परिणामसुखावहम् ॥ १३ ॥

भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् ।
युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥ १४ ॥

× × ×

कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि ।
त्वत्तो बलवती राधा न ते भद्रं भविष्यति ॥ १७ ॥

ब्रह्मवै० पु० प्रकृतिखण्डः, अध्या० ४

× × ×

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि ।
प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ ॥ १७ ॥

चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम् ।
सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥ १८ ॥

विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च मुदा क्षणम् ।
क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥ १९ ॥

बोधयामास तां पद्मा सत्त्वरूपा च सस्मिता ।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव हि ॥ २० ॥

उवाच गङ्गाभर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना ।
कम्पिता कोपवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥ २१ ॥

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीः प्रति ।
धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥ २२ ॥

ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर ।
कमलायां च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयि प्रभो ॥ २३ ॥

गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चापि सुसंमता ।
क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥ २४ ॥
किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च साम्प्रतम् ।
निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमान्वितम् ॥ २५ ॥

× × ×

सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसयुताम् ।
मनसा तु समालोच्य स जगाम बहिः सभा ॥ २७ ॥
गते नारायणे गङ्गामवोचन्निर्भयं रुषा ।
वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःखम् ॥ २८ ॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम् ।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुम् ॥ २९ ॥
मानहानिं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ ।
किं करिष्यति ते कान्तो मम वै कान्तवल्लभः ॥ ३० ॥
इत्येवमुक्त्वा गङ्गाया जिघृक्षु शपमुद्यताम् ।
वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥ ३१ ॥
शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती ।
वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥ ३२ ॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्नो वक्तुमर्हसि ।
सन्तिष्ठसि सभामध्ये यथा वृक्षे यथा सरित् ॥ ३३ ॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशाप चुकोप न ।
तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥ ३४ ॥
अत्युद्धतां च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना ।
उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां पद्मविलोचना ॥ ३५ ॥
त्वमुत्सृज महोग्रां तां पद्मे किं मे करिष्यति ।
वाग्दुष्टा वागधिष्ठात्री देवीयं कलहप्रिया ॥ ३६ ॥
यावती योग्यताऽस्याश्च यावती शक्तिरेव वा ।
तथा करोतु वादं च मया सार्धं सुदुर्मुखा ॥ ३७ ॥
स्वब ं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु ।
जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥ ३८ ॥
इत्युक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति ।
सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वामशपद्रुषा ॥ ३९ ॥
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः ।
कलौ तेषां च पापांशं लभिष्यति न संशयः ॥ ४० ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ।
त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥ ४१ ॥

ब्रह्मवै० पु० प्रकृतिखण्डः, अध्या० ६

पुण्यक्षेत्रे ह्याजगाम भारते सा सरस्वती ।
गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥ १ ॥

भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया ।
वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्त्तिता ॥ २ ॥

सर्वं विश्वं परिव्याप्य स्त्रोतस्येव हि दृश्यते ।
हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥ ३ ॥

सरस्वती नदी सा च तीर्थरुपातिपावनी ।
पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४ ॥

× × ×

ब्रह्मवै० पु० प्रकृतिखण्डः, अध्या० ७

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः ॥ ८ ॥

तस्य क्रोधात् समुद्भूतज्वालामालाविदीपितम् ।
ब्रह्मणोऽभूत् तदा सर्वं त्रैलोक्यमखिलं मुनी ॥ ९ ॥

भृकुटिकुटिलात् तस्य ललाटात् क्रोधदीपितात् ।
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥ १० ॥

अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ॥ ११ ॥

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ।
बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा च सः ॥ १२ ॥

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः ॥ १३ ॥

ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं द्विजम् ॥ १४ ॥

शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥ १५ ॥

× × ×

विष्णुपु० १.७

तत्प्रभावं सरस्वत्याः स विज्ञाय महीपतिः ।
श्रद्धया परया युक्तो ध्यायमानः सरस्वतीम् ॥ १६ ॥

ततस्तूर्णं समादाय मृत्तिकां स नदीतटात् ।
चकार भारतीं देवीं स्वयमेव चतुर्भुजाम् ॥ १७ ॥

दधतीं दक्षिणे हस्ते कमलं सुमनोहरम् ।
अक्षमालां तथान्यस्मिञ्जिततारकं वर्चसम् ॥ १८ ॥

कमण्डलुं तथान्यस्मिन्दिव्यवारिप्रपूरितम् ।
पुस्तकं च तथा वामे सर्वविद्यासमुद्भवम् ॥ १९ ॥

स्कन्दपु० ६.४६

ततः सरस्वतीं प्राह देवदेवो जनार्द्दनः ।
त्वमेव व्रज कल्याणि प्रतीच्यां लवणोदधौ ॥ १३ ॥

एवं कृते सुराः सर्वे भविष्यन्ति भयोज्झिताः ।
अन्यथा वाडवेनैते दह्यते स्वेन तेजसा ॥ १४ ॥

तस्मात्त्वं रक्ष विबुधाने तस्मात्तुमुलाद्भयात् ।
मातेव भव सुश्रोणि सुराणामभयप्रदा ॥ १५ ॥

× × ×

ततो विसृज्य तां देवी नदी भूत्वा सरस्वती ॥ ४० ॥

हिमवतं गिरिं प्राप्य प्लक्षात्तत्र विनिर्गता ।
अवतीर्णा धरापृष्ठे मत्स्यकच्छपसङ्कुला ॥ ४१ ॥

स्क० पु० ७.३३

तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः ।
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती ॥ २४ ॥

शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयुस्तथा ।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥ २५ ॥

गोमती धूतपापा च बुद्बुदा च दृषद्वती ।
कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठिवी गण्डकी तथा ॥ २६ ॥

चक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिस्सृताः ।
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ॥ २७ ॥

ब्रह्मपु० २.१६

सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥ ६० ॥

सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते।
शरद्वांस्तु त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥ ६१ ॥

ब्रह्मपु० ४.४

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मतं महत्।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥ ११७ ॥

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभना।
आन्विक्षिकी त्रयीविद्या दण्डनीतिश्च कथ्यते ॥ ११८ ॥

पद्मपु० ५.२७

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज।
विष्णुशक्त्याः सरस्वत्याः पूजां शृणु शुभप्रदाम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः ओं ह्रां हृदयाय नमः ह्रूं ओं ह्रीं शिरसे नमः ओं ह्रीं शिखायै नमः ओं ह्रैं कवचाय नमः ओं ह्रौं।

नेत्रत्रयाय नमः ओं ह्रः अस्त्राय नमः ॥ ८ ॥

श्रद्धा ऋद्धिः कला मेधा तुष्टिः पुष्टिः प्रभा मतिः।
ओंकाराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तयः ॥ ९ ॥

ओं क्षेत्रपालाय नमः ओं गुरुभ्यो नमः।
ओं परमगुरुभ्यो नमः ॥ १० ॥

पद्मस्थायाः सरस्वत्या आसनाद्यं प्रकल्पयेत्।
सूर्य्यादीनां स्वकैर्मन्त्रैः पवित्रारोहणन्तथा ॥ ११ ॥

गरुडपु० १.७

चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भैरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महनदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ भाग० पु० ५.१९.१८

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरन्तीं मनः।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ भा० पु० ३.१२.२८

त्वं देवि सर्वलोकनां माता देवारणिः शुभा।
सदसद्देवि यत्किञ्चिन्मोक्षबोधाय यत्पदम् ॥ ६ ॥
यथा जलं सागरे हि तथा तत्त्वयि संस्थितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत्क्षरात्मकम् ॥ ७ ॥

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा श्रुतम् ।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥ ८ ॥

ऊँकाराक्षरसंस्थानं यत्र देवि स्थिरास्थिरम् ।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च ॥ ९ ॥

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥ १० ॥

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् ।
त्रिधातवस्तथाऽवस्थाः पितरश्चाणिमादयः ॥ ११ ॥

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ।
विभिन्नदर्शना आद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ॥ १२ ॥

वामनपु० अध्या० ३२

वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः ।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥ ६ ॥

आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिकी ॥ ७ ॥

दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी ।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वती ॥ ८ ॥

वामनपु० अध्या० ३४

पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्तिः कान्तिः क्षमा तथा ।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत् ॥ १५ ॥

त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता ।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती तदा ॥ १६ ॥

वामनपु० अध्या० ४०

गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥

दधौ चाष्टभुजाबाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥

एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १६ ॥

वैकृतिरहस्यम् ५९

—:०:—

मूर्ति-व्याख्या

प्लेट १ : शिर-रहित सरस्वती की प्रतिमा है, जिसमें शक सम्वत् ५४ (१३२ ई०) अङ्कित है। यह सम्भवतः सर्वप्रथम सरस्वती की प्रतिमा है, जो कङ्काली टीला, मथुरा से प्राप्त है। इस का दक्षिण हाथ अभय मुद्रा में है तथा वाम हाथ एक पुस्तक को धारण करता है। मूर्ति का आधार सूचित करता है कि यह मूर्ति सीह के पुत्र स्मिथ गोआ की उपहार है।

प्लेट २ : जीवधारी नदी-देवता सरस्वती की प्रतिमा है। यह त्रिभङ्ग-मुद्रा में पत्तों के गुच्छों तथा लता के मध्य एक कमल पर खड़ी है। यह पतली एवं लम्बी मूर्ति जीवधारी दो अन्य नदी-देवता गङ्गा और यमुना के साथ दक्षिण भारत के एलौरा के विशाल कैलाश मन्दिर में खुदी हुई है।

प्लेट ३ : सरस्वती की यह मूर्ति बैठी हुई स्थिति में है। इस के ऊपरी दो हाथों में अक्षमाला तथा पुस्तक हैं। नीचे के दोनों हाथों से वीणा बजा रही है। सुहानियाँ से प्राप्त मूर्ति का सम्बन्ध गुरजर-प्रतिहार काल ९वीं शताब्दी से है। इस समय यह केन्द्रीय पुरातत्त्व-सम्बन्धी संग्रहालय, ग्वालियर में सुरक्षित है।

प्लेट ४ : सरस्वती की सम्पूर्ण अङ्गों सहित यह मूर्ति त्रिभङ्ग मुद्रा में खड़ी है। यह विद्या-मन्दिर की अठिष्ठातृ-देवी है, जिसे राजा भोज ने स्थापित किया था। राजा भोज धारा के परमार वंश के एक महान् प्रतापी राजा थे। मूर्ति के आधार पर लिखित आलेख बताता है कि यह प्रतिमा मूर्तिकार मन्थल द्वारा १०३४ में बनाई गई थी। इस समय यह ब्रिटिश संग्रहालय, लण्डन में प्रदर्शित है।

प्लेट ५ : सरस्वती की यह प्रतिमा कमल पर ललितासन में है। यह अपने ऊपरी दोनों हाथों में अक्षमाला तथा पुस्तक धारण किए हुए है। नीचे का दाहिना हाथ वरद-मुद्रा में है तथा उस का दूसरा समकक्ष हाथ सम्भवतः एक कमण्डलु को धारण करता है। यह जटा-मुकुट तथा दूसरे आभूषणों को धारण करती है।

प्लेट ६ : यह प्रतिमा त्रिभङ्ग मुद्रा में पूर्ण विकसित कमल पर खड़ी है। यह अक्ष-माला, कमल, ताड़-पत्र-पुस्तक तथा कमण्डलु को धारण किए हुए है।

स्वच्छ सङ्गमर्रर पर खुदी यह प्रतिमा शिरोभूषण तथा अन्य आभूषणों को धारण किए हुए है। यह दो अन्य वीणा बजाती हुई स्त्री-प्रतिमाओं से संयुक्त है। दाता तथा उस की पत्नी स्तुति में इस के चरणों में पड़े हैं। सामने आधार-स्थल पर हंस चित्रित है।

प्लेट ७ : एक दूसरी सरस्वती की प्रतिमा ऊपर के सभी प्रतिमा-सिद्धान्तों के साथ बीकानेर संग्रहालय में प्रदर्शित है। प्रतिमा एक प्रभातोरण रखती है, जो विभिन्न जैन देवियों को प्रदर्शित कर रही है।

प्लेट ८ : दो हाथों वाली पुष्टि की टूटी हुई प्रतिमा विष्णु की पत्नियों में से एक है। यह अपने हाथों में वीणा को धारण किए हुए है।

प्लेट ९ : ललितासन में बैठी सरस्वती अपनी प्रिय वीणा बजा रही है। इस का ऊपरी दाहिना हाथ टूटा हुआ है तथा नीचे के वाम हाथ में पुस्तक है। सामने हंस तथा दो भक्त अञ्जलि-मुद्रा में प्रदर्शित हैं।

प्लेट १० : काँस की निर्मित सरस्वती की दो हाथों की प्रतिमा अपने गोद में वीणा बजा रही है। यह दो पुरुष-प्रतिमाओं से संयुक्त है, जो बाँसुरी तथा मँजीरा बजा रहे हैं। इस का वाहन सामने दाहिने ओर प्रदर्शित है। प्रभामण्डल प्रज्ज्वलित परिधि वाला है।

प्लेट ११ : यह सरस्वती दुहरे कमलासन पर स्थित है। यह अपने ऊपरी हाथों में अक्षमाला तथा पुस्तक धारण करती है तथा इस के नीचे के हाथ वीणा धारण करते हैं। इस के केश धम्मिल-पद्धति में गुम्फित हैं। यह अनोखे आभूषणों को धारण किए हुए है। उस का वाहन हंस के स्थान पर मेंड़ा है।

प्लेट १२ : दो हाथों वाली सरस्वती अपने हाथों से वीणा बजा रही है। यह उस समय के आभूषणों के साथ-साथ साड़ी धारण किए हुए है, जो मेखला से आबद्ध है।

प्लेट १३ : यह नृत्य करती हुई सरस्वती है, जिसका दाहिना पद भूमि पर है, वाम उठा हुआ है तथा जानु पर झुकी हुई है। आम्र-वृक्ष के नीचे प्रदर्शित बहुहस्त-देवी अक्षमाला, अङ्कुश, पुस्तक तथा वीणा धारण किए हुए है। यह आभूषणों से लदी हुई है।

प्लेट १४ : भारत के अन्य भागों की अपेक्षा सरस्वती कर्नाटक में मूर्ति-विद्या-सिद्धान्तों के अनुसार अधिकतर नृत्य करती हुई मुद्रा में प्रदर्शित है। उत्तर भारत में सम्भवतः नर्तन करती हुई सरस्वती केवल रायपुर में हार्सलेश्वर मन्दिर में उपलब्ध है (म० प्र०, परमार, ११वीं शताब्दी)।

नृत्य करती हुई सरस्वती की प्रतिमा हाथों में अक्षमाला, अङ्कुश, कमल, फन्दा, पुस्तक तथा वीणा धारण करती है। यह रत्न-जटित मुकुट तथा तत्कालीन आभूषणों से सुसज्जित है। इस का वाहन हंस दक्षिण पद के निकट प्रदर्शित है। यह मूर्ति होयशाल कला की अत्युत्तम कलाओं में से एक है।

प्लेट १५ : कमलासन पर कमलासन मुद्रा में बैठी सरस्वती की मूर्ति है। इस का दाहिना हाथ टूटा हुआ है तथा वाम हाथ पुस्तक धारण करता है। यह जटामुकुट, सामान्य आभूषण तथा स्तन-पट्टी धारण किए हुए है। दोनों ओर चौरी धारण करने वाले दो सेवक हैं। दाढ़ी-धारण किए हुए ऋषि दोनों ओर प्रदर्शित हैं, जो उस की आराधना कर रहे हैं। प्रतिमा चोला-कला की उत्कृष्ट प्रतिकृति है।

प्लेट १६ : विद्या एवं कला की देवी द्विगुणित कमलासन पर बैठी है। यह चार हाथों वाली देवी जटा-मुकुट, अर्धचन्द्राकार हार, पवित्र यज्ञोपवीत तथा कर्धनी से बँधी धोती धारण करती है।



सरस्वती
कुशाण, द्वितीय शताब्दी
राज्य संग्रहालय
लखनऊ



सरस्वती

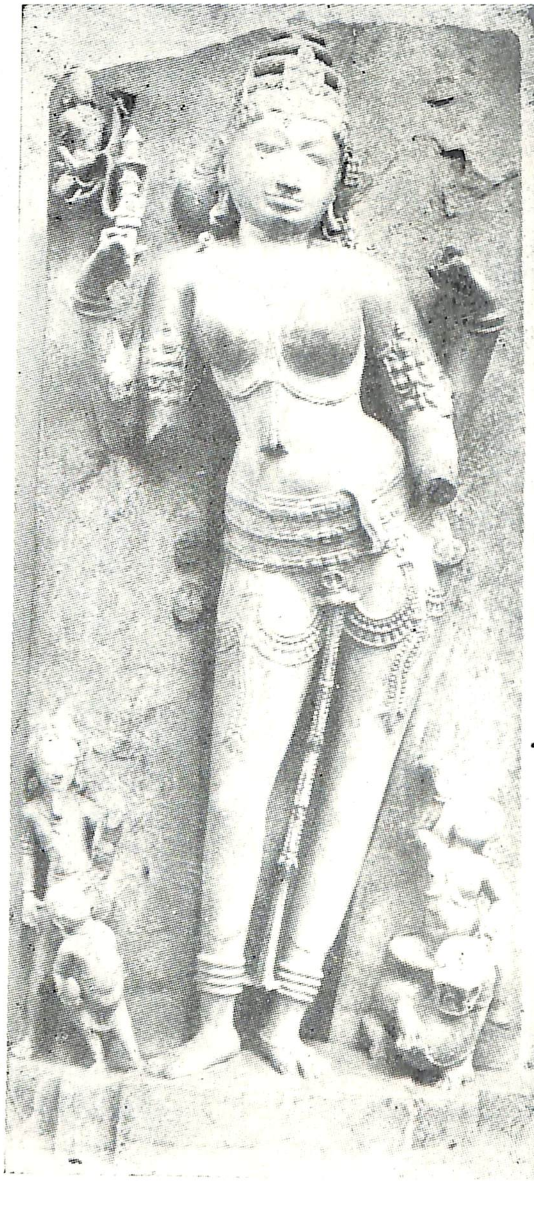
राष्ट्रकूट, ८वीं शताब्दी

कैलाश मन्दिर,

एलौरा, महाराष्ट्र



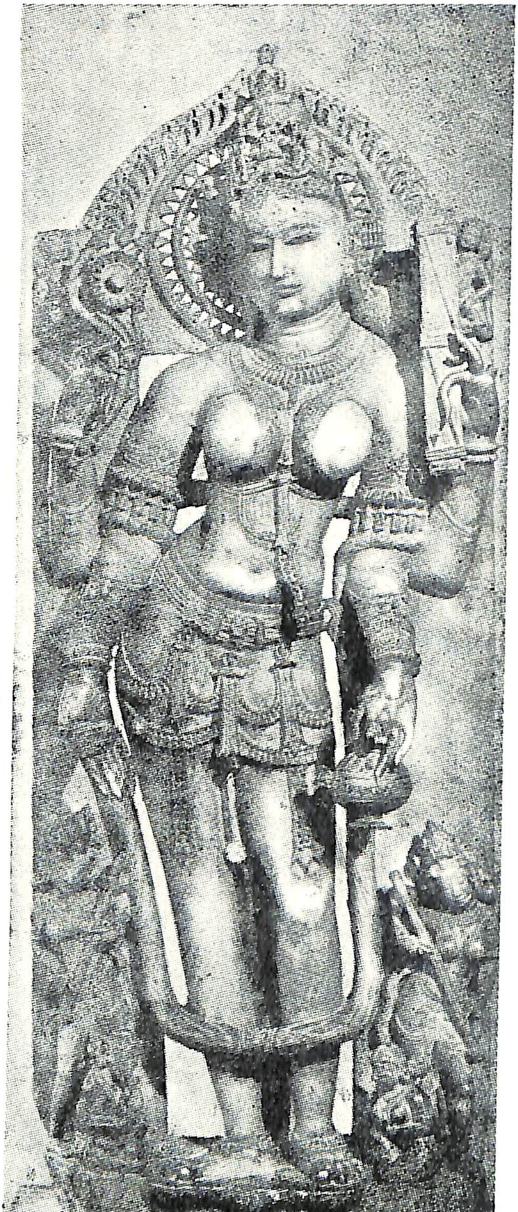
सरस्वती, ९वीं शताब्दी, केन्द्रीय पुरातत्व संग्रहालय, ग्वालियर



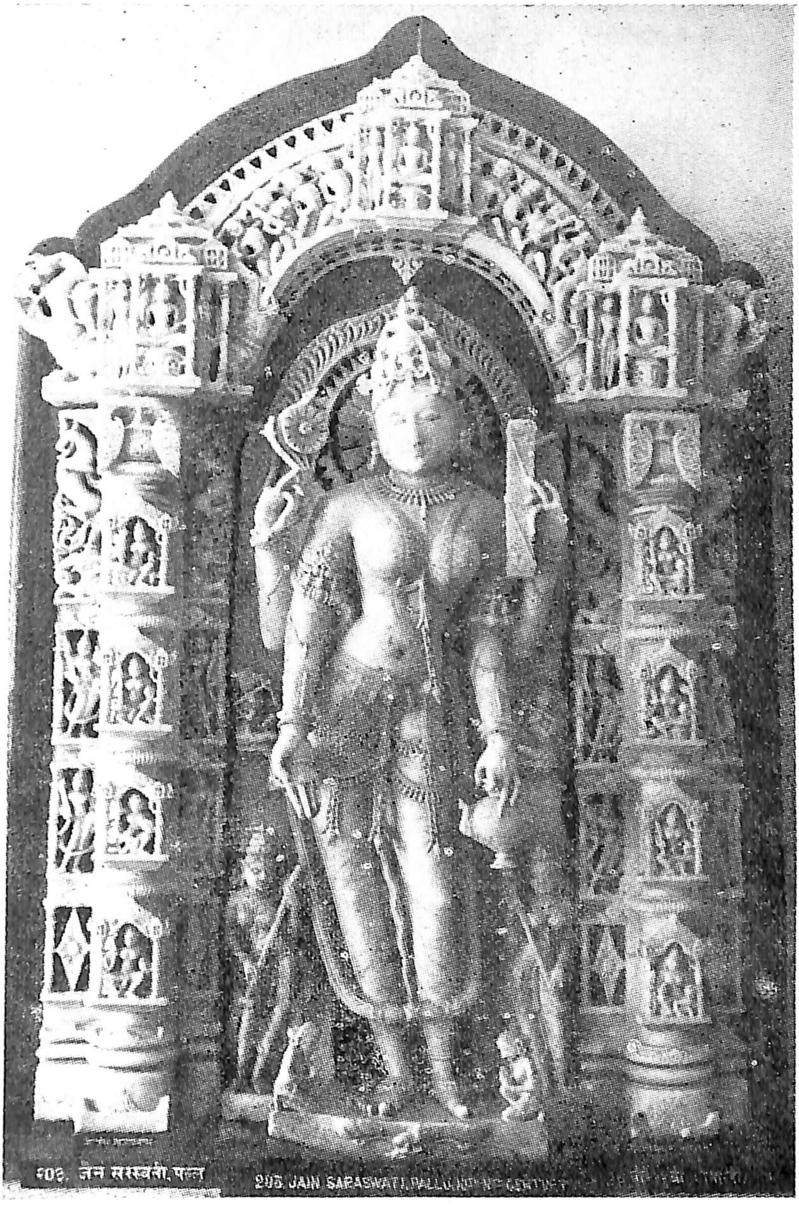
सरस्वती
१०३४ शताब्दी, परमार,
ब्रिटिश संग्रहालय,
लण्डन



सरस्वती
परमार, ११वीं शताब्दी,
राष्ट्रीय संग्रहालय,
नई दिल्ली



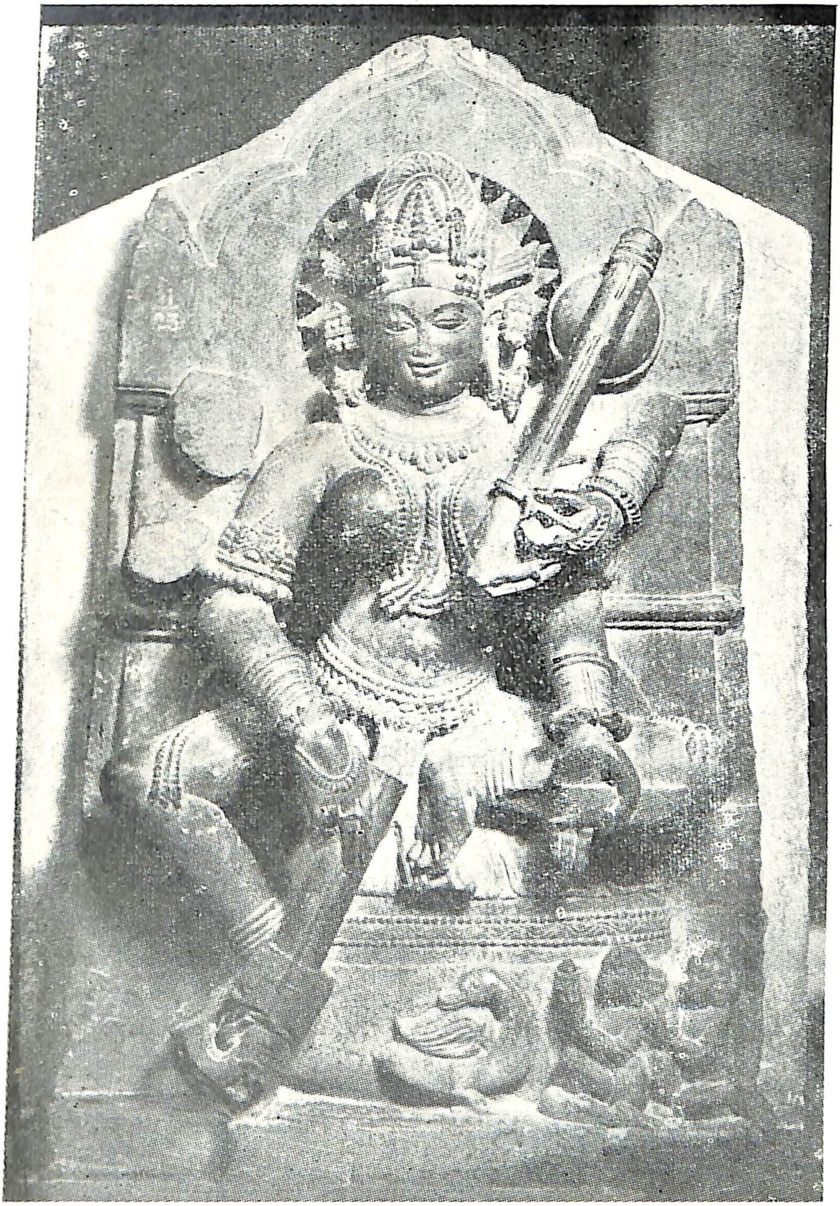
सरस्वती
चौहान, १२वीं शताब्दी
पल्लु, बिकानेर, राजस्थान,
राष्ट्रीय संग्रहालय,
नई दिल्ली



सरस्वती
चौहान, १२वीं शताब्दी,
पल्लु, बिकानेर, राजस्थान,
गङ्गा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय,
बिकानेर



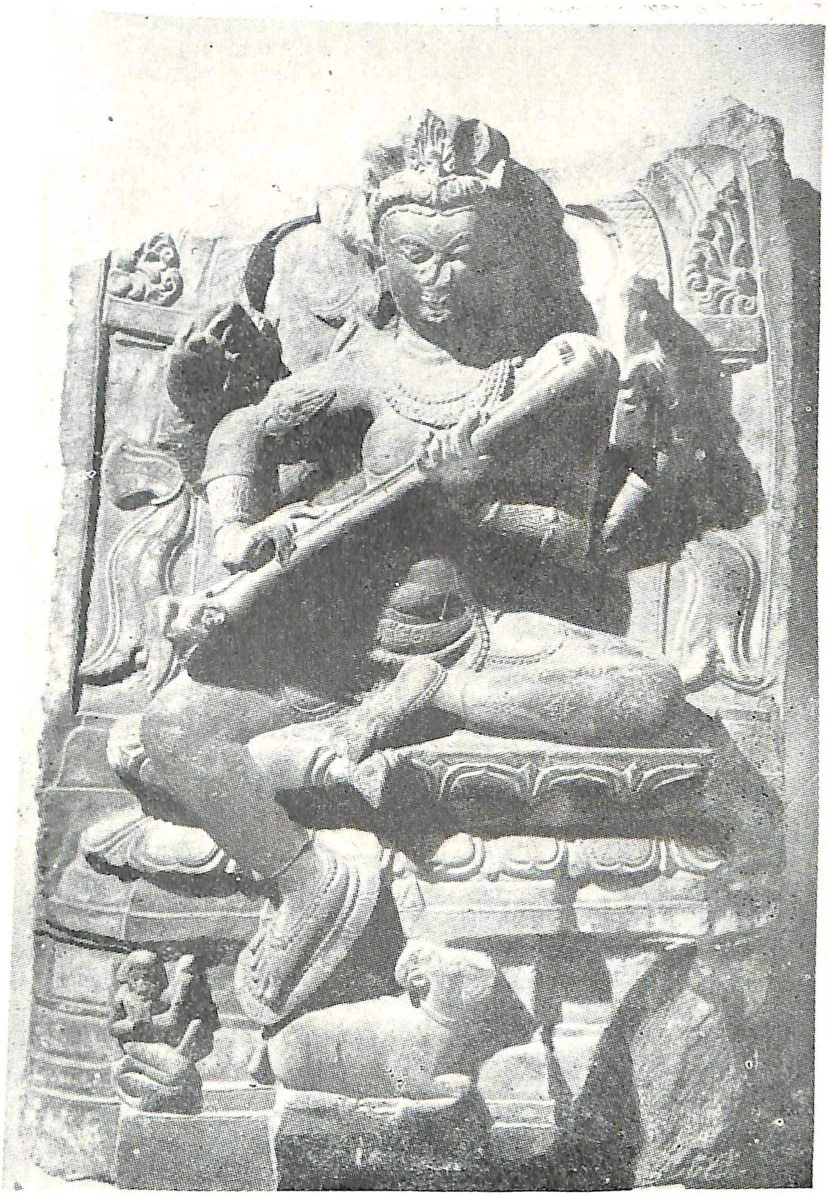
सरस्वती
गाहडवाल, ११वीं-१२वीं शताब्दी
गोरखपुर, उ० प्र०,
राज्य संग्रहालय,
लखनऊ



सरस्वती
गाहडवाल, १२वीं शताब्दी
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश,
राज्य संग्रहालय,
लखनऊ



सरस्वती
पाल, ९वीं शताब्दी
नालन्दा, बिहार,
राष्ट्रीय संग्रहालय,
नई दिल्ली



सरस्वती
पाल, १०वीं शताब्दी
गया, बिहार,
राष्ट्रीय संग्रहालय,
नई दिल्ली



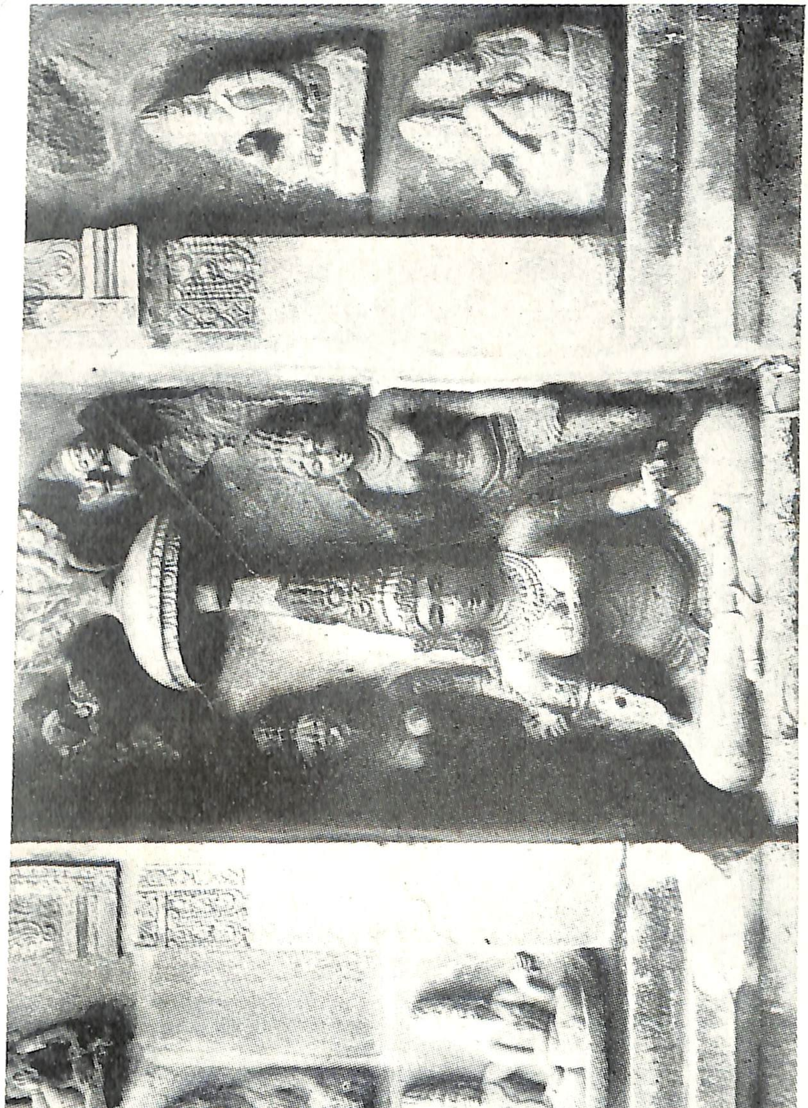
सरस्वती
पाल, १०वीं शताब्दी
२४ परगना, गङ्गाल,
आशुतोष संग्रहालय,
कलकत्ता



सरस्वती
होयशाल, १२वीं शताब्दी
केशव मन्दिर
सोमनाथपुर
कर्नाटक



सरस्वती
होयशाल, १२वीं शताब्दी
हार्सलेश्वर मन्दिर, हेलेबिड,
कर्नाटक



सरस्वती, चोला, १२वीं शताब्दी, बृहदेश्वर मन्दिर, तञ्जौर, तमिल नाडु



सरस्वती
चोला, विजय नगर, १३वीं-१४वीं शताब्दी
तमिल नाडू